# ॥ भूमिका ॥

शास्त्र में कहा है कि बुद्धेः फलं तत्त्व विचारणंच । अर्थात् बुद्धि पाने का फल यह है कि तत्त्वों का विचार करे परंतु असली तत्त्वों की ओलखान तब प्राप्त होती है जब कि गुरुमुख से शास्त्र श्रवण करें. अथवा विद्वानों के रचित ग्रंथ बांचे. पहिला कारण मिलना कठिन है क्योंकि साधु महात्मा का समागम मिलना दुर्लभ है और दूसरा कारण सहज प्राप्तिय है फिर भी सर्व साधारण मूल्य व्यय कर पुस्तक मोल ले नहीं सके, इस लिये जैन भंडार के सभासदों के कहने से मैंने इस पुस्तक को जैन भंडार की तरफ से बिना मूल्य बांटने के लिये छपाकर आप लोगों के सन्मुख प्रस्तुत करता हूं इसमें जैन धर्म के असली तत्त्व जो दान दया आदि हैं उसको खंडन करने वाले जिनको तेरापंथी कहते हैं उनके श्रावक किसनमल जी भंडारी ने जो श्री श्री १००८ श्री श्रीपूज्यजी श्री श्रीलालजी महाराज की समुदाय के पंडित स्वामी जी श्री १००८ श्री जुहारलाल जी ने जो तेरा पंथियों के पूज्य डालचंदजी से जोधपुर में ७ प्रश्न पूछे हुवे के उत्तर में एड़ंगबड़ंग करके जो प्रश्नोत्तर नाम की पुस्तक छपाई उसका खंडन विस्तार सहित है इसको बांचने से मिथ्यात्व कमती होगा. तो आपने भाइयों की श्रद्धा दृढ़ होगी तो मेरा छपाने का परिश्रम सफल होगा

भीनासर [illegible]

[illegible]

[illegible]

# अथ अनुक्रमणिका.



## निवेदन

सर्व श्रीमान साधु साध्वी श्रावक श्राविका रूप श्री श्रमण संघ से तथा मार्गानुसारी सम्यगदृष्टि सज्जन भव्यजनों को विदित होवे कि हम तेरपंथी कृत प्रश्नोत्तर नाम पुस्तक के उत्तर के प्रत्युत्तर समीक्षा को श्रीमत् सूत्र प्रमाण से संक्षिप्त पणे लिखा है। तिसमें किञ्चित् भी श्री जिन वचनों से न्यूनाधिक विपरीत दोष लग्य लिख गया होवे तिसका उक्त लिखे श्री श्रमण संघ की साक्षी से मिथ्या दुकड़ं देते हैं इत्यलं. विस्तरेण क्रियाधिकम् विज्ञेषु ॥

यादृशं पुस्तक दृष्टा तादृश लिखितं मया ॥
यदि शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न दीयते ॥

# श्री श्री पूज्य श्रीलालजी का गुणलिख्यते।

—— ०. ——

दोहा-अरिहंत सिद्ध परिणाम करि आचार्य उपाध्याय। साधसकल को सुमिरनां मन वांछित फल पाय ॥ १ ॥ वीरपाट ७४ में हुये हुकम मुनी महाराज, आचारज बहु शोभिया तिरन तारन की जहाज ॥ २ ॥ तस्सू पाटोधर दीपिया श्री शिवलाल मुनिंद, सब साधु बिच जानज्यो तारों में जिमि चंद ॥ ३ ॥ उनके पीछे जानिये उदयसागरजी महाराज, आपतणा गुण देख के पाखंड जाते भाज ॥ ४ ॥ चौथे पाट चौथमलजी पंडितों में सिरताज, हुवा आचारज मोटका जांरी कीरति होरही आज ॥ ५ ॥ उनके पाट पर शोभता वर्तमान गणिराज तपी रिष त्यागी मुनि श्री श्रीलालजी महाराज ॥ ६ ॥ उनका गुण प्रगट करुं अल्प बुद्धि अनुसार, भूलचूक जो हो मेरी खमिजो वारंवार ॥ ७ ॥

टेर—इन भरतखंडमें आप बडे जसधारी पुज्य श्री श्रीलालजी महाराज आचारज भारी

उनइस से छब्बीस टोंक शहर में जानो, जन्म हुआ पुज्य का ओसवंशमें मानो, वां चंब गोत में आप लियो अवतारी ॥ पुज्य श्री० १ ॥ श्री चुन्निलालजी आप के तात कहावे, पन चांदकुंवर मा ऐसे पुत्र जावे, ई रूप अनूपम सुन्दर मोहनगारी ॥ पुज्य श्री० २ ॥ उनइस में चवांलिसे मालवे मंदसौर मां रहा, वां जान्यो संसार असार जेन जहि दीन्हा, पन छोटी वय में आप भये ब्रह्मचारी ॥ पुज्य श्री० ३ ॥ वां देख नेमा ...

पुनः सर्व सज्जनों को विदित होकि हम अव्वल उक्त पुस्तक के जो लेख समालोचना करने योग्य समझे हैं तीनों की समालोचना करते हैं जिससे पाठकगण को सहज मालुम होजायगा कि यह पुस्तक का लेख ससंबंध है कि असंबंध है श्री सिद्धान्तशास्त्र समन्वित है कि नहीं है इत्यादि उक्त पुस्तक के गुण दोष दिखलाने के बाद ७ प्रश्नों का उत्तर लिख दिखलावेंगे। इसकी समालोचना करते हुए हम इस पुस्तक के विषय में ह्रस्व, दीर्घ, व्यंजनादि दोषों की उपेक्षा करेंगे. उपेक्षा केवल उनकी करेंगे जो शास्त्रों के विरुद्ध और असंबंध लेख है तिनको इति इर्य॥

प्रश्न-पहिले के उत्तर में पृष्ठ २ की पंक्ति ३। ४। ५ मी तक (क) लिखा है। श्री भगवान् महावीर स्वामी ने १० स्वप्न देखे. जिन में पिशाचों की जीत और भुजा से समुद्र को तिरे यह वार्ता ठाणांगजी सूत्र का १० मा ठाणा में है।

समीक्षा—अब पाठकगण को ख्याल करने की बात है श्री मन्महावीर स्वामी ने जो दश स्वप्न देखे हैं तिसका वृत्तान्त श्री ठाणांगजी सूत्र का १० में ठाणे तथा श्रीमती भगवतीजी सूत्र के १६ शतक के छठे उद्देश में है अन्य भी जैन शास्त्रों में जहां भगवंतजी के १० स्वप्न का अधिकार है वहां कोई भी जगे ऐसा सूत्र नहीं है कि जिनमें पिशाचों को जीते ऐसा अर्थ होसके. हां पूर्वोक्त सूत्रों में तो ऐसे पाठ दृष्टि पड़ते हैं। तद्यथा॥ एगं चणं महं घोर रूवं दित्तधर ताल पिसायं सुविणे पराजियं पासित्ताणं पडिबुद्धे॥

वह साधु पद से भ्रष्ट है आपके लिखने के अनुसार अब न्याय से तो तेरेपंथी साधुओं का साधुपना उठ गया चाहिये और जब वह साधु ही नहीं, तो उनको जो लोग साधु माने तिनको मिथ्यात्व लगे. क्योंकि शास्त्रों में कहा है कि असाधु को साधु श्रद्दे तो मिथ्यात्व लगे और छद्मस्थ प्रथम प्राणातिपात जीव की हिंसा कर लेवे. दूसरा मृषावाद झूठ बोल लेवे. तीसरा चोरी कर लेवे. चौथे शब्द रूप रस गंध और स्पर्श में रतिभाव मान लेवे. पंचमा पूजा श्लाघा में हर्ष लावे. छठा सावद्य आहारादिक भोग लेवे. सातमां प्ररूपणा के अनुसार नहीं चले यह ७ बोल सेव लेवे।

अब विचारो कि सर्व छद्मस्थों के तांई यह ऊपर लिखा ७ वां बोल कहते हो तो आपके मत के आदि पुरुषों को भी चूका मानना और कहना पड़ेगा और जब वह चूके तो उनके निकाले मत की क्या प्रतीत. और जिनके मत की प्रतीत नहीं तो तिनमतस्थ पुरुषों के वाक्य को तो विशेषतः प्रतीत करने योग्य नहीं है. अब निकट भव्यों के लाभार्थ श्रीमत् ठाणांगजी के लेख का यथार्थ तात्पर्य दर्शाते हैं कि पूर्वोक्त ७ लक्षण से प्रायः छद्मस्थ जाना जाय परन्तु यहां ऐसा नहीं समझना कि सर्व छद्मस्थों के लिये उक्त सात बोल का नियम है अगर ऐसा होय तो ११ तथा १२ गुण स्थान वाला जीव भी छद्मस्थ है और इनको तो सिर्फ इरियावही क्रिया लागनी सूत्रों में ठाम २ कही है अब कहो पूर्वोक्त ७ बोल इनको भी लागू पड़ सकेंगे कि नहीं जब श्रीमन् अर्हन भगवंतजी के पर मृषा दोषारोपण के लिये ऐसी मृषा घटना घटनी तो नप

वादियों का काम है और पृष्ठ ३ की पंक्ति १ से २५ वीं तक आनंदजी के पास श्रीगोतम स्वामी वचन में खता गये वह संबंध लिखके श्रीभगवंतजी की तथा श्रीगौतमजी की छद्मस्थ दशा के लिखा है कि गौतम स्वामी ४ ज्ञान छत ऐसे ही श्रीभगवान के भी छद्मस्थपन में चूक ॥

को भी पूरा करना पड़ेगा और जो करोगे तभी तदनाओ
के पूरने की नियमा नहीं है तब श्री गौतमजी स्वामी बचन
में स्खलायें जिसका दृष्टांत श्री भगवंतजी पर कैसे घट सकेगा
अपितु नहीं घट सके और ४ ज्ञान वाले कोई २ पड़वाई
भी होजाते हैं अथवा परभव भी कर लेते हैं तो क्या यह
भी वार्ता श्री भगवंतजी पर घट सकती है क्योंकि छद्मस्थपन
में जैसा भगवंतजी को ४ ज्ञान होता है वैसा ही उन्न लिखे
चार ज्ञानी हैं अब आपके लेख से तो ऐसा सिद्ध होता है
कि कोई काल में कोई छद्मस्थ तीर्थंकर चार ज्ञानी पड़वाई भी
होजावे, परभव भी कर लेवे तो क्या असंभव है? वाहजी
वाह! देवानुप्रिया तुमने तो यह एक अपूर्व बात लिखी विदित
होती है और गौतम स्वामी को तो भगवंतजी ने स्वयं श्रीमुख
से कहा है कि तुम वचन में स्खला गये, जैसे छद्म चूके होते तो
प्रकट क्यों न करा? क्या भगवंतो का स्वभाव अपना अवगुण
ढाकने का होता है। और पृष्ट २ की पंक्ति १७मी से पृष्ट
चौथा की पंक्ति दूजी तक लिखा है कि प्रथम तो स्वप्न ही
सावद्य कर्म है और जितने भी पिशाचों को जीतना और
भुजा से समुद्र को तैरना विशेष सावद्य कर्म है।

( समीक्षा ) अब पाठकगण महाशय विचार रखना कि
यहां पर श्रीमद् भगवंतजी के स्वप्न का वृत्तांत है और वह
उनको सावद्य कर्म लिखते हैं वह उन्हों का लिखना बिलकुल
असमंजस है भगवंतजी के स्वप्न परम मंगलिक मोक्षफलदायी
लिखा है अब हम श्री भगवंतजी के १० स्वप्न का प्रभाव जैसा
कि श्री सिद्धांत शास्त्रों में लिखा है वैसा पूर्ण स्वरूप से

अगाड़ी चलके लिखेंगे. यहां तो संक्षेप मात्र लिखते हैं सो सूत्र-पाठ ( जणं समणे भगवं महावीरे एगं मह घोर रूवं दित्त धरं ताल पिसायं सुविणे पराजियं पासित्ताणं पडिबुद्धे तणं समणे भगवया महावीरेणं मोहणीज्झे कम्ममूलउ घातिउ ) इसका संक्षेपार्थ ॥ जदि श्रमण भगवंत श्री महावीर देव एक मोटो भयंकर रूप तेजवंत एहवो ताड सदृश पिशाच स्वप्न में जीता देख के जागे तिसके प्रभावे श्रमण भगवंत श्री महावीर देव मोहनीय कर्म को मूल थकी घात कीधो १ अब ७ में स्वप्न में श्री भगवंतजी समुद्र तिरा देखा है तद्यथा ( एगं चणं महासागर उम्मीवीइ सहस्सकलियं भूयाहिं तिणिं सुविणे पासित्ताणं पडिबुद्धे ७ जणं समणे भगवं महावीरं एगं महं सागरं जाव पडिबुद्धे–तेणं समणे भगवं महावीरे अणादिये अणवदग्ग जाव संसार कंतारेतिणे ) ७ इसका संक्षेपार्थ । एक मोटो सागर ते समुद्र कैसा है वह मोटा कल्लोल तथा छोटी लहिर तिनके सहस्र सहित ऐसा समुद्र भुजा से तिरयो ऐसा स्वप्न देखके जोग जइ यदि श्रमण भगवंत महावीरे एक बड़ो समुद्र स्वभुजा करके तिरयो स्वप्न में देखके जागे तिसके प्रभावे तेह श्रमण भगवंत महावीर अनादि अनंत यावत् संसाररूपणी अटवी का पार पाया अर्थात् भव समुद्र को तिरे इत्यादि ) अब विचारो कि श्रीभगवंत के स्वप्न को सावद्य कर्म कैसे कहा जावे, कारण कि सावद्य कर्म का फल पाडुवा पानि माठा लगता है. साक्षी सूत्रजी श्रीउव्वाईजी की ॥ सूत्र पाठ ॥ (दुच्चिना कम्मा दुच्चिना फला भवंति ) इति संक्षेपार्थ. खोटे कर्तव्यों का खोटा फल होना है अब ज्यों श्रीभगवंतजी का

है तिसमें चित्त समाधि का दश स्थान कहा है तिसका आदि सूत्र ऐसे हैं तद्यथा सूत्र पाठ ॥ ( सुसमाहियचित्ताणं झियायमाणाणं इमाइं दसचित्त समाहिठाणाइं असमुप्पण्ण पुव्वाइं समुप्पज्जेज्जा तंजहा ) इसका संक्षेपार्थ ऐसा है कि भली समाधि के विषे प्राप्त धर्मध्यान शुक्लध्यान ध्यावताने एहवाने एह आगली कहिस्ये ते दशचित्त समाधिना स्थानक पूर्वे कदेही ऊपना नहीं ते उपजे ते कहे छे. अब देखिये समाधिनाम निःकषाय शांति परिणाम का है अब निःकषाय शांतिपरिणाम को तेरे पंथी सिवाय कौन सावद्य कर्म कहते होंगे? अब उक्त श्रीदशाश्रुतस्कंधजी के ५ अध्ययन में दशचित्त समाधि होने का १० स्थानों में तीसरा स्थान स्वप्न का है सो सूत्र पाठ ऐसा है।

( सुमिण दंसणं वास असमुप्पण्ण पुव्वे समुप्पज्जेज्जा अहातच्चं सुमिणं पासित्तए ) इसका टबार्थ जैसा है तैसा यहां पर लिखते हैं। स्वप्न दर्शन जिम भगवती में कह्योतिम यथा तथ्य अमवत् प्रकारे पूर्वे ऊपनो नहीं ते उपजे महावीर देवनी परे यथातथ्य स्वप्न देखे जेहवो देखे तेहवो फले पुनः ( अहातच्चं सुमिणं खिप्पं पासिनिसंवुडे सव्वंवाओहंतरंति दुक्खाओ विमुच्चइ २ ) इसका टबार्थ अक्षर जैसा है तैसा यहां पर लिखते हैं. यथातथ्य जे स्वप्न सांचो तुरत देखे संवर द्वार नो धणी सर्व संसाररूप समुद्रथकी दुख थकी मुकाय इति। देखिये श्रीभगवंतजी श्रीसूत्र में यथातथ्य स्वप्न की ऐसी प्रशंसा करी है जिसको सावद्य कर्म कैसे कहा जा सकता है यहां पर भाव लाग कदाग्रह पर श्री चित्त समाधि के यथातथ्य स्वप्न

चेव इति) इसका अर्थ संवृत हे भगवन् रुन्ध्याजिणे आश्रव द्वार ते सर्ववृत्ति इत्यर्थः ते स्वप्न मत्ये देखे जिणे आश्रवद्वार रुंध्या नहीं ते असंवृत अविरति इत्यर्थः ते स्वप्न देखे अथवा संवृन्या संवृत्य ते देशवृति स्वप्न देखे इति प्रश्नः। अथोत्तरम् । हे गौतम संवृत ते पिण स्वप्न देखे असंवृत स्वप्न देखे संवृत्या संवृत पिणे स्वप्न देखे जे संवृत स्वप्न देखे ते सत्य स्वप्नहीज देखे विशेषार्थ यहां पर ऐसा जानना कि विशिष्टतर संवृतत्वयुक्त ग्रहवोते प्राय क्षीणमल थकीवा देव अनुग्रह पणां थकी सत्यहीज स्वप्न देखे असंवृत स्वप्न देखे ते तिमहीज एतलेऽयथार्थ ते स्वप्न पिण हुए अथवा अन्यथा पिण ते स्वप्न हुवे संवृता संवृत देखे ते पिणतिमहीज यथार्थ अयथार्थ उभय हुवे यह ऊपर लिखी श्रीसूत्र साक्षी से क्या सिद्ध हुवा कि श्रीभगवंत परम संवृत क्षीण मलयका यथातथ्य स्वप्न देखा है तिन यथातथ्य स्वप्न को श्रीदशा श्रुतस्कंध में श्रीमुख से सराया है और उदाहरण दीना कि कैसा स्वप्न यथातथ्य कि जैसा श्री महावीरे देखा तैसा ऐसे श्रीसिद्धांत शास्त्र श्रीभगवंतजी के स्वप्न को परम मंगलिक मोक्षफल पद सिद्ध कर दिखाते हैं अब जो आप लोग नहीं मानोगे तो हम आप लोगों के मोहनी कर्म का उदय विशेष समझेंगे ॥ इति श्रीभगवंतजी के स्वप्न को विशेष ही सावद्य कर्म कथन तस्य निराकरणम् ॥ पृष्ट ४ या की पंक्ति ३ जी से ५ मी तक की।

समीक्षा-इसमें आपने लिखा है कि (ख) श्री भगवंत महावीर स्वामी ने गोशाला को दीक्षा दी यह आपका गोलमाल लेख है. श्री भगवंतजी ने गोशालाजी को दीक्षा दी ऐसा

विधि सूत्र तो भगवतीजी में नहीं है सिर्फ इतना अधिकार है कि तीन वेर गोशालाजी श्री भगवंतजी की वंदना नमस्कार करके कहा है भगवन् आप मेरा धर्मगुरु धर्माचार्य हो, मैं आप का धर्म का शिष्य हूं तिसका उक्त वचनों को प्रभु ने आदर न दीनों, मन में भलो न जाण्यों, मौन करि रह्या, अने फिर गोशालाजी ने श्री भगवंतजी पुनः चौथी वेर ऐसे कहा। ते सूत्रपाठ ॥ ( तुब्भेणं भंते मम धम्मायरिया अहण्णं तुब्भे धम्मं तेवासी ) सुगमार्थः। तिसपर भगवंतजी क्या कहते भये ते सूत्रपाठ ॥ ( ततेणं अहं गोयमा गोशालस्स मंखलिपुत्तस्स एय मट पडि सुणेमि ) इसका संक्षेपार्थ ऐसा है। कि विचारे हुं हे गौतम। गोशाल मंखलिपुत्र नो ए अर्थ प्रति अंगीकार करूं अर्थात् अंगीकार कीनों. श्री भगवतीजी मूल में तो इतना ही वृत्तान्त है और टीकाकार ने जो उस स्थान पर अर्थ फैलाया है जिसका भावार्थ ऐसा कहा है कि शायद कोई बहुल कर्मी जीव श्री भगवंतजी की भूल जाने तिसवास्ते अक्षीण रागादि जीव अवश्य भावी भावात् कारण दर्शाया है सो इता दर्शाया है परन्तु चूका कहणा सो अज्ञता आल जानना अथवा कहोगे कि छद्मस्थ तीर्थंकर उपदेश देकर शिष्य वर्ग को दीक्षा देवे ते भगवंत गोशालजी को अंगीकार कीना यह भी आप का कहना निराधार है कारण की तीर्थंकर भगवंतजी कल्पा- तीत आचार विहारी हैं उन्हों की दीर्घ दृष्टि होती है वह निष्प्रयोजन व विरुद्ध व अथवा अन्य कदापि व कोई कार्य नहीं करे और ऐसा कोई नियम भी नहीं है कि तीर्थंकरजी के इतना शिष्य अवश्य होना व अथवा इतने पुरुषों को साधु

लेकर निकले. जेकर ऐसा होवे तो इस चौवीसी में विलक्षणता कैसे रही, जैसे कि श्री ऋषभदेवजी चार हजार पुरुषों को प्रथम आप दीक्षा लेके दीक्षा दी और श्रीवासु पूज्यजी ६०० पुरुषों को आप दीक्षा लेके दीक्षा दी, श्री पार्श्व प्रभुजी ३०० को स्वयं दीक्षा लेके दीक्षा दी तथा श्री अजीतनाथादि श्री नेमनाथजी ने एक सहस्र पुरुषों को स्वयं दीक्षा लेके दीक्षा दी है और श्री वर्द्धमान स्वामी आप इकेलाहीज दीक्षा लीनी है तैसेही श्रमण साधुओं की सम्प्रदायक में वश हैं सो श्री सिद्धान्तों से जानना, तो कहिये गोशालाजी को अङ्गीकार करने मात्र से कैसे चूका कहा जाय, जेकर कहोगे कि प्रभु अयोग्य को अङ्गीकार कीनो जिससे चूका यह भी आपका कहना विचारशून्य है क्योंकि जिस वक्त गोशालाजी को प्रभु जी ने अंगीकार कीनो; तिस वक्त गोशालाजी को अयोग्य कहां लिखा है बल्कि उसवक्त तो गोशालाजी भगवंतजी को वंदना नमस्कार विनय करके शिष्य होने की अर्ज करी है और यह विनय सर्व गुणों का भाजन है सो तो योग्य जीव का होवे जिससे गोशालाजी उसवक्त अयोग्य नहीं था. पुनः फार भी आगमीय काल का दोष के अनजानने से गोशाला जी को भगवंतजी ने ग्रहण करा मानते हो तो उसवक्त यानि वर्तमान में निर्दोषपना स्वतः सिद्ध होता है, जेकर कहोगे पश्चात् अपवित्र अविनित होगया और मिथ्यात्व पड़गया जिसमें चूका कहते हैं तब तो श्री ऋषभदेवजी स्वामी चार हजार पुरुषों को दीक्षा दी है और वह क्षुधावेदनिका परिषह असमर्थ हुए सबका सब भाग गये और तथा महानदी के

दक्षिणोत्तर कूलों पर कंद मूल फल शाकाहारी तापस हुए ३६३ पाखंड मत उन्हीं से चला और अद्यावधि प्रवृत्त है यह कितना मिथ्यात्व बढ़ा, जब श्री ऋषभदेवजी को भी चूका कहना पड़ेगा सो तो आप कहते हो नहीं. सिर्फ श्री महावीरजी को चूके कहते हो सो आपका मत पक्ष के लिये तथा श्री दया भगवतीजी से द्वेष करना सिद्ध होता है और श्री वर्द्धमान स्वामी श्रीजमालीजी को केवल ज्ञान उत्पन्न होने के बाद दीक्षा दीनी है सो प्रसिद्ध है और वह भी पश्चात् अविनीत श्रद्धाभ्रष्ट होकर घणा मिथ्यात्व बढ़ाया है तब भी चूका कहना पड़ेगा फिर नंदन मणिहार को केवल थकां श्री भगवान ने श्रावकपन दिया है वह भी भ्रष्ट होगया प्रसिद्ध है तब यहां भी चूका कहना पड़ेगा. छद्मस्थपन में तो अनागत काल का दोष का अनजान पने से चूका कहते हो तिन मे ही बढ़के केवलीपन में जानकर दोष लगाकर चूका कहना पड़ेगा सो ज्ञानदृष्टि करके देखनाजी और पृष्ठ ४ की पंक्ति ६ से ९ वीं तक की.

समीक्षा-( ग ) श्री भगवंत महावीर स्वामी ने गोशाला को तिलका लोड़ ( पोधा ) बताया और उसने भगवान् के वचन को असत्य करने के लिये उखेड़ डाला यह आपका लिखना श्री सूत्रजी से विरुद्ध है क्योंकि श्री गोशालाजी को श्री भगवंतजी ने तिलका लोड नहीं बतलाया है उसने स्वतः देखा है. देखके श्री भगवंतजी से पूछा की है और पृष्ठ ९८ का उत्तर दीना है फिर आपका अभिप्राय ऐसा है कि साधु के निमित्त भावना नहीं और प्रभुजी ने भाव्य जिसका यह

धान प्रथम तो मुख्य साष्टांग निमित्त मांहिला निमित्त यह नहीं है पुनः आपही के लेख से समझलो. सो ऐसा है, कि आनंदजी को जितना अवधि ज्ञान उत्पन्न हुवा था उतना के वास्ते श्री गौतम गणधरजी ने इनकार किया और कहा कि तुझको संथारा में झूठ लगता है सो आलोयणा ले, तब आनंदजी ने कहा कि हे स्वामी आलोएणा सच्चा लेता है या झूंठा? तब गौतम स्वामी ने कहा कि झूंठा लेवे. अब कहो कि भगवंतजी ने उक्त तिलका छोड़के बारे में जो कुछ कहा है सच्चा कहा है कि झूंठा. यहां पर आपको यह ही कहना पड़ेगा कि कहा तो सच्चा ही है परन्तु भगवंतजी के बचनों से हिंसा हुई सो भगवंतजी को परचात् कर्म दोष लगा ( तिसका समाधान ) सूत्रों में स्वयं कृतकर्म होते हैं ऐसा लिखा है, परन्तु परकृत कर्म नहीं लगे तो कहो हिंसा के कामी भगवंत होते, तब तो उक्त गोशाला कृत हिंसा के कर्म प्रभु को लगते, परन्तु भगवंत उक्त हिंसा के कामी नहीं थे जैसा भाव ज्ञान में देखा तैसा भाखा जिनसे किंचित् मात्र भी भगवंत को हिंसा का पाप नहीं लगा है।

दृष्टांत-जैसे साधु विहार करते किसी से मार्ग पूछा और उन्होंने अपना से दौड़के वा उगाड़े मुख मार्ग बतावे तिसमें साधु को किंचिन्मात्र पाप नहीं लगे, कारण साधु मार्ग पूछने का कामी है, परन्तु पूर्वोक्त हिंसा के कामी नहीं, तिनसे तैसे ही भगवंत के लिये समझाना और पृष्ट ४ की पंक्ति १० मी से १२ मी तक की।

समीक्षा-श्रीभगवान ने तेजुलेश्या प्रकट करके गोशाल

को बचाया इसका समाधान प्रथम तो तेजुशीतल लेश्या लिखा सो सूत्र विरुद्ध लेख है और लिखने वाले की बड़ी जालसाजी विदित होती है, कारण कि श्रीभगवतीजी में तो निम्न लिखे मुजब फरमाया है सो सूत्र पाठ ॥ ( तएणं अहं गोयमा गोशालस्स मंखलीपुत्तस्स अणुकंपणठयाऐवासिया-यणस्स बाल तवस्सिस्स सा उसिणतेउ लेस्सा ते पडिसा हरण न्याए एत्यणं अंतरा अहं सीय लियंते एलेस्सं निस्सिरा मिजाए इति )।

सुगमार्थः–इसमें ऐसा कहा कि वाल तपस्वी वैश्यायन की उष्ण तेजु लेश्या की उष्णता रोकने के लिये भगवंतजी ने शीतल लेश्या मेली और आपने अल्पज्ञों को बहकाने को शीतल लेश्या को तेजुका भेद जताने के लिये तेजु शीतल लेश्या लिखी सो आपको बुद्धि का विशेष अजीर्ण है यहां पर आपको ऐसा भ्रम है कि ( सीयं लियंते पलेस्सं ) ऐसा अक्षर देख के शीतल तेजु लेश्या जानते हो परन्तु हृदयचक्षु खोल के देखो ( उसिण तेउ लेस्सा ) तेजु लेश्या कही वहां उकार है और शीतल लेश्या कही है वहां यकार है और शीतल लेश्या के पास तेजस्स शब्द प्रकाशार्थेऽथवा तेजुका तेज रोकने के अर्थ है परन्तु तेजु लेश्या का भेद शीतल लेश्या नहीं जानना, कारण तेजु लेश्या लब्धि और शीतल लेश्या लब्धिकों श्री सिद्धांत शास्त्रों में भिन्न २ कथन करी है जेकर ऐसे होवे तो जैसे वैश्यायन बाल तपस्वी ने तेजु लेश्या प्रगट करती वक्त ( तेया समुग्घायेणं समोहणंति२ त्ता ) ऐसा पाठ है तैसे भगवंतजी ने शीतल लेश्या प्रकट करनी

यत्र उक्त पाठ होता तो आपका कहना शायद मिलता अन्य था नहीं और लेश्या फोरने में जघन्य तीन क्रिया और उत्कृष्ट पांच क्रिया कही हैं. पन्नवणा सूत्र क ३६ में पद में जिसका समाधान आपने अपनी जान में अनजान भोलेभाले को भिसतारने के लिये प्रपंच वाक्जाल रचना लिखने में बड़ी बुद्धि की लड़ाई है, लेकिन जरा सोचो कि सूत्रजी श्री पन्नवणाजी में ऐसा कथन किसी जगह नहीं है कि तेजो शीतल लेश्या फोड़े उसको ३ तथा ५ क्रिया आवे, यानि लग तक सूत्रजी के ३६ में पद में तेजस समुद्घात वाले के लिये तीन पांच क्रिया कही है. मान लिया जावे, कि क्रिया लगने मात्र से भी चूका नहीं कहसके हैं क्योंकि क्रिया तो केवली को भी लगे हैं अब फिर कहो कि श्री सूत्रजी में लेश्या फोरने में क्रिया लिखी है कि लब्धि फोरने में क्रिया लिखी है शायद कहोगे कि लेश्या लब्धि एकही है तो आपकी बड़ी भूल समझेंगे, फिर आप लब्धि फोरने में क्रिया कही कहते हो तो भी देवानुप्रियाजी अनिक विषयों की मर्द लब्धि फोरने में क्रिया नहीं लगती है श्री सूत्रजी में तो माया करनाई कर्ग वैक्रीय लब्धि फोड़े जिसको क्रिया कही है जिसको ही प्रायश्चित लेने से आराधिक कहा है [illegible] ही [illegible]लब्धि का [illegible] मानना, लेकिन शीतल लेश्या श्रीवद्दया निमित्त फोड़े जिसका प्रायश्चित किस अग उपांगादि में कहा जाएगा. नहीं मा कहा [illegible] आपका बतलाना था. यहां पर आप [illegible] प्रायश्चित कहा है [illegible] [illegible] नहीं है

तिन में वैक्रीय लब्दि फोरवे तिसका संबंध हम ऊपर लिख आये हैं और तेजुलेश्या करके अनेक जीवने वाले क्रोधकरी यह प्रत्यक्ष प्रायश्चित्त नो ठाम दीखे है और शास्त्र में कहा ही है लेकिन २८ लब्दि में से केवल ज्ञान की लब्दि, तीर्थंकर की लब्दि, गणधर पदवी की लब्दि, चारित्र लब्दि, अवधि मन पर्यव ज्ञान की लब्दि, १४ पूर्व धरनी लब्दि, इत्यादि लब्दि को प्रायश्चित्त आवे तो शीतल लेश्या जीवदया के ताईं फोरे तिनको प्रायश्चित्त होवे पूर्वोक्त लब्दियां को प्रायश्चित्त नहीं तैसे शीतल लेश्या को प्रायश्चित्त नहीं है पुनः उक्त पृष्ट की पंक्ति १४ मी से २५ मी तक की।

समीक्षा–और इस में आपने लिखा है जिसका तात्पर्य यह है कि छद्मस्थपन में तो भगवान ने यह तीनों कार्य किये और केवल ज्ञान उत्पन्न होने पर श्री भगवान ने इन्हीं कार्यों का अपने श्रीमुख से निषेध किया है तो कहिये कि श्री भगवान के केवली दशा के वचन को सत्य मानें की छद्मस्थपन के इत्यादि। सुनो भाई! श्री भगवंतजी की करणी छद्मस्थपने और केवलपने दोनों अवस्था में एक सरीसी अभूल करनी है, कारण कि छद्मस्थपने ही आगम व्यवहारी हैं और आगम व्यवहारी पणे तो कषायकुशीलादि ऊपरला ३ नियंठा में पावे तेहने अपड़िसेवी कह्या है मूल गुण महाव्रत ५ में उत्तर गुण दश विध प्रत्याख्यान में दोष लगावे नहीं। साक्षी श्री सूत्र भगवतीजी शतक २५ मे उद्देशे ६ में और केवली दशा मे पिन आगम व्यवहारी है सूत्र में कह्या तेमा कार्य छद्मस्थपन ही आगम व्यवहारी पना मे किया और केवलपने मे पिण आगम

व्यवहारी पने से किया छद्मस्थ और केवलपने में एकसी कृति थी भगवंतजी ने की है तो यहां पर ऐसा समझो कि श्री सूत्रों में सामान्य साधु जो सूत्र व्यवहारी स्थिवर कल्पि को वर्जित किया है परन्तु अपने लिये निषेध नहीं किया ऐसा जानना चाहिये जो अपने लिये पूर्वोक्त कार्य निषेध किया होता तो केवल ज्ञान उत्पन्न होने के बाद निम्नलिखित कार्य कैसे करते जैसे कि कालीकुमार प्रमुख १० के मरने बतलाये १ श्री नेम नाथजी स्वामी ने द्वारिका का १२ वर्ष दाह बताया २ गो-शालाजी को ७ दिन पश्चात् मरण बतलाया और महाशत कजी श्रमणोपासक ने रेवती का मरण बताया तब श्री गौतम स्वामी को भेजकर प्रायश्चित्त दिलवाया और आप सुखे बत-लाया केवल ज्ञान उत्पन्न होने के बाद श्री गौतम गणधरजी को गोशालाजी के मर्मच्छेदनरूप उनका अर्थात् गोशालाजी का इतिहास वर्णन किया. अन्य सामान्य साधु को मर्मच्छेदन करनी तथा हिंसा करनी और माषा बोलनी मना की है ४ और गोशालाजी की हेलने निंदने की आज्ञा दी ५ और छद्मस्थपन में आप अनार्य क्षेत्र में विचरण किया परन्तु अन्य सामान्य साधुओं को वर्जित किया यह पूर्वोक्त बोल भगवंत पने आगम व्यवहारी पने से किया है और अन्य सामान्य साधुओं को वर्जित किया है अब आपका यह कहना एकांत सत्य कैसे माना जाय फिर आप पूर्वोक्त सर्व बोलों में तो भगवंतजी को पूज्य नहीं करते हो सिर्फ गोशालाजी को अनु कंपा मानकर बचाया इसीसे चूका बतलाते हो. उसका कारण क्या है अगर कहोगे कि हम तो ऊपर लिखे सर्व बोलों में

चूका कहते हैं तो कहो सूत्रजी में वर्णित किए हुए काम प्रभु ने छद्मस्थ पने में कैसे किये हैं वैसे ही केवली दशा में भी किया है जब छद्मस्थ अवस्था में चूका मानोगे तो केवली दशा में भी चूका मानना पड़ेगा लेकिन यह बन नहीं सकता है. आपको यह भी स्पष्ट लिखना चाहिये था कि भगवंत इतनी वार चूके. फिर भी आपने लिखा है कि छद्मस्थपन में गोशाला को तेजु शीतल लेश्या फोरकर तेजु लेश्या से बचाया है और केवल ज्ञान होजाने पर अपने सामने गोशाला ने तेजु लेश्या से दो साधुओं को भस्म किया, उस समय उनको नहीं बचाया जिसका समाधान. इन साधुओं पर भी प्रभुजी की अनंत भाव दया थी, परंतु उनका निमित्त कारण आ मिला. यदि लेश्या लब्धि फोरे दोष जानके न बचाया कहोगे तो जो जीवितव्य होता तो विहार क्यों न करा दिया! क्या विहार करने में भी प्रभुजी पाप जानते थे? देवानुप्रिया वास्ते तिन मुनियों का आयु अवसान का निमित्त अवसर बलिष्ट देखा इसमें भगवंतजी क्या करें सिर्फ व्यवहार करने को भगवंतजी ने वर्जित कराया था. लेकिन आयुष्य अवसान का समय था सो उसे कौन टाले! क्रोड़ों तीर्थंकर इकट्ठे होकर भी किसी की आयु बढाने को समर्थ नहीं हो सकते. यहां पर एकांत ऐसा नहीं समझना कि आयु घटे बढ़े नहीं तो फिर हर एक जीव को बचाने का यत्न क्यों करना चाहिये! इसका विचार छद्मस्थों को तो व्यवहार ही ऐसा बतना और केवली जिस का जीवितव्य देखें तो प्रयत्न करें, निरर्थक उद्यम न करें. ऐसे ही भगवन्त के विषय में जानना. टीकाकार ने

अर्थात्‌सराग गोशालाजी को बचाया लिखा है और दो मुनियों को बचाने का प्रयत्न न किया सो चीण रागात् ऐसा लिखा है. उसका तात्पर्य ऐसा है कि सराग संयमी छद्मस्थ का जीव चाहे न जीवे पर बचाने का उद्यम अवश्य करना इसी कारण भगवंतजी ने किया है और वीतराग भाव से आयुष्य अवसान आया जान लिया और होनहार टलता न जाना इससे उक्त मुनियों के बचाने का भगवंत ने प्रयत्न न किया. यह भावार्थ आगमव्यवहारी न करने लायक काम कभी न करे. यह हमने श्रीभगवंतजी को चूका कहने का मृषा सूत्रपाठ जो तुमने बतलाये हैं उनका निराकरण किया, इसके आगे श्रीभगवंतजी ने दीक्षित होने के पश्चात् किंचित् भी पाप सेवन न किया और न कहीं चूके सो सूत्रपाठ से दिखलावेंगे। पृष्ठ ४ की पंक्ति २६ मी से पृष्ठ ५ वां की पंक्ति २० वी तक का।

समीक्षा–इसमें आपने लिखा है कि श्री सुधर्म स्वामीजी ने श्रीभगवंतजी के गुण किये हैं और गुण कथन के प्रकरण में गुण कथन हो सकते हैं उस पर उदाहरण कोणीक का अल्पज्ञों को बहकाने के लिये दिया है वह असमीचीन है कारण यह कि कोणिक के जीव ने श्रेणिक से वैर लेने के लिये ही श्रेणिक के पुत्र करके उत्पन्न हुवा, इसलिये कोणिक निदान कृत था, वैर लेने के पश्चात् निदान पूर्ण हुआ तत्पश्चात् विनीत पणे का गुण प्रकटा, तब गणधरों ने श्रीतीर्थंकर देवजी के कथनानुसार गुण कथन किये हैं परंतु अपने मन से नहीं कहा है. फिर जैसे अधर्मी तो धर्मी हो जावे, अज्ञानी

ज्ञानी होजावे, निर्धन धनी होजावे, ऐसे ही अविनित से विनित होजावे, इसलिये जिस समय जैसा गुण वर्तेगा वैसा ही कहा जायगा, इस कारण गुण प्रकरण में गुण किये ऐसा यहां पर नहीं बन सकता है ऐसा तो तब होता जब कि कोणिक का अविनितपना कथन इन ही सुधर्म स्वामिकृत सूत्रों में अन्य जगह है ऐसे ही श्रीभगवंतजी के चूकने का कथन किसी सूत्र में होता तो यह उदाहरण ठीक समझा जाता अन्यथा जैसे डूबता हुआ फेन पकड़े तद्वत् आपकी लीला है अब हम आचारांगजी के प्रथम श्रुतस्कंधजी के नवमाध्ययन के चतुर्थ उद्देशे में जैसा कहा है तैसा यहां पर सूत्र पाठ लिखते हैं वह ध्यान देकर श्रवण करो ( णच्चाण से महावीरे णोविये पावगं सयंमकासी, अणं हंवाण कारित्था करंतं पिणाणु जाणित्ता ८ ) इसका संक्षेपार्थ यह है कि हे उपादेय स्वरूप जाणीने ते महावीर देवजी निश्चय पापकर्म पोते कीनो नहीं अर्थात् न पाप किया न पाप कराया और न पाप करने की अनुमोदना की ऐसे तीन कारणों से प्रभुजी ने पाप नहीं किया. प्रत्यक्ष सिद्धांतों में है ते छते आपने ऐसा लिखा है कि श्रीसुधर्मा स्वामीजी ने भगवंत का गुण किया है सो ठीक नहीं, अब आप कहो कि श्री सुधर्म स्वामीजी ने श्री भगवतंजी के गुण अपने मन से किये हैं या श्रीभगवंतजी के कथनानुसार किये हैं यदि कहोगे कि स्वयं कल्पित अर्थात् अपने मन से गुण किये हैं तो जो सूत्र विद्यमान हैं वह सब श्रीसुधर्मस्वामी की वाचना के हैं अर्थात् सुधर्म स्वामी कृत हैं आपभी ऐसा ही मानते हो तो क्या यह सब स्वयं कल्पित सिद्ध हुए और जिस वक्त द्वादशांग

की रचना की थी उस समय श्री सुधर्मस्वामी भी छद्मस्थ थे और छद्मस्थ को आप चूके मानते हो अर्थात् छद्मस्थों के वाक्यों की प्रतीति कम करते हो यह अब कैसे बनेगा अगर कहोगे कि पूर्वोक्त भगवंतजी के गुण श्री सुधर्मस्वामीजी भगवंतजी के कथनानुसार कथन किये हैं तो केवल सुधर्म स्वामी का नाम क्यों लेते हो और गुण प्रकरण में गुण किया है ऐसा क्यों कहते हो ?

देवानुप्रिया के वास्ते श्रीमुख से भगवंत ने जैसा २ भाव फरमाया तैसा २ भाव श्री गणधरों ने ग्रंथन किया है. जैसे कि ( सुयंमे आउसंतेणं भगवया एव मरकाय ) इति वचनात् पुनः ( अत्थं भासई अरहासुत्तं गुथेइ गणहरा निउणा ) इत्यादि पुनः ( अत्तागमे अणंतरागमे परंपरागमे ) इति ऊपर लिखे इस लेख का तात्पर्य यह है कि श्री भगवंतजी ने छद्मस्थपणे सूत्र में वर्ज्या सो कार्य आगमां व्यवहार से किया और केवल ज्ञान होने के पश्चात् सूत्रजी की वाणी प्रकाश की उसमें श्रीमुख से कहा कि मैंने छद्मस्थपने में पाप नहीं किया अब आपके कथन से छद्मस्थपने में पाप लगा अर्थात् पाप सेवन किया और केवल दशा में कपट सहित झूंठ सेवन किया और फिर उन्हीं के प्ररूपण किये हुए यह सूत्र हैं सो क्यों न झूंठ होवें ! अब आपको प्रतीति किसकी रही अर्थात् किसी की नहीं प्राप्त तो नास्तिक भाव में आ पड़े. यहां पर आप कहते हो कि भगवंतजी ने जान कर पाप नहीं किया, अनजाने पाप लगा, यह भी कहना भ्रष्ट है, क्योंकि प्रभु ने स्वयं श्रीमुख से कहा कि हे गोशाला मैं नहीं अनुकंपा के वास्ते शीतल लेश्या

होवे पृष्ठ ५ वें की पंक्ति २१ वीं से पृष्ठ ६ वें की पंक्ति ३ री तक की समीक्षा ।

इस लेख में सिर्फ हमारा इतना लिखना है कि तीर्थंकर देवजी की अवस्था प्रकट लिख के पश्चात् लिखते कि अमुक अवस्था में अमुक दशा तीर्थंकरजी की आगमानुसार धरते तब मालुम पड़ता कि आगम के जानवान जानने वाले अविवेकी कौन हैं पुनः हम सर्व सज्जनों से निवेदन करते हैं कि यह प्रथम प्रश्नोत्तर की समालोचना सूत्र की साक्षी देकर हम ऊपर लिख आये हैं इस से आम लोग यो न जान लेना कि २२ टोला के प्रश्न पर तेरापंथियों ने दे दिया कारण यह कि अगर वह संतोषकारक उत्तर दे देते तो हमें कष्ट न उठाना पड़ता ( अपनी तर्फ के प्रश्नाक्षरमिदम् अर्थात् यह प्रश्न तेरापंथियों से पूछा गया था कि श्री महावीर भगवंत की दीक्षा लेने से अनंतर छद्मस्थपन में चूके बतलाते हो सो पाठ दिखलावो) अब कहिये कहीं चूके ऐसा पाठ होवे तो दिखलावें परंतु बतावे कहां से ? लेकिन उत्तर में तो कुछ न कुछ लिखना ही चाहिये तब अंडबंड ऊटपटांग सूत्रों से विरुद्ध असम्बद्ध लेख लिख दिया. हमने उसकी भी समीक्षा करदी है बाकी प्रश्न तो जोधपुर कृत श्रावकों का है ऐसा सर्वत्र जानना । इति प्रथम् इति प्रथम प्रश्नोत्तरस्य समीक्षा ॥

# अथाग्रे द्वितीय प्रश्नोत्तरस्य समीक्षा लिख्यते.

पृष्ट ६ पंक्ति छठी से १२ मी तक की समीक्षा—इसमें आप ने लिखा है कि असंयति अव्रति को सूजता असूजता सचित अचित असनपान (खानपान) देवे, दिलावे, देते हुए का अनुमोदन करे, तो (एगंत सोसपाव कम्म कज्जतिणत्थि सकावी निजरा कज्जती) एकांत पाप कर्म होवे. किंचित् निर्जरा नहीं. यह पाठ भगवती सूत्र के आठवें शतक के ६ वें उद्देशे में है. आपका यह लिखना सूत्र लोपने गोपने रूप गोलमाल है और आप लोगों की यह बड़ी दुर्घट घटना है कि अपने कथन को सत्य दिखलाने के लिये पूर्णरूप से सूत्रपाठ को गोप के अपने कथन को पुष्टकारक जितने हर्फ जानो उतने धर के कहते हो कि देखिये अमुक सूत्रजी में श्रीभगवंतजी ने ऐसा कहा है बस तुम इसी रचना से अन्यज्ञों को बहकाते जाते हो तैसेही यहां पर लीला समझो. कारण कि श्रीमती भगवतीजी सूत्र के आठवें शतक के छठवें उद्देशे में तीनों पाठ मोक्ष के अर्थ दान देने के लिये पूछा है सो तीन पाठ लिखते हैं ॥ सूत्रपाठ ॥ (समणोवासगस्सणं भंते तहारुवाणं समणं वा माहणं वा फासु एसणिज्जेणं असणं पाणं खाइमं साइमं पडिलाभे माणस्स किंकज्जइ। गो० एगंतसो से निज्जरा कज्जइ णत्थिय से पावे कम्मे कज्जइ) समणोवासगस्सणं भंते तहारूवं वा समणं वा माहणं वा अफासुएणं अणेसणिज्जेणं असणं जाव पडिलाभेमाणस्स किंकज्जइ. गो० बहुतरिया से निज्जरा कज्जइ अप्पतराएसे पावे कम्मे कज्जइ) [illegible]

स्सणं भंते तहारूवं असंजय अविरय अपडिहय अपचक्खाय पावकम्मे फासुएणंवा अफासुएणंवा एसणिज्जेणं वा अणे सणिज्जेणंवा असणं जाव पडिलाभे माणस्स किंकज्जइ. गो० एगंतसोसेपाव कम्मे कज्जइणत्थि सेकाविणीज्जराकज्जइ )

सुगमार्थ–अब देखिये तीनों पाठों में दातारे एक श्रमणो पासक श्रावक को कहा है और प्रतिग्राही दो पाठ में तो तथा रूप समण नाम साधु माहण नाम यहां पर ४२ दूषण टाल आहार के भोजी प्रतिमा प्रतिपन्न यानि प्रतिमाधारी उत्कृष्ट तपस्वी श्रावक को ग्रहण करना. यहां पर आप कहोंगे कि माहण शब्द श्रावक को कहां कहा है? तिस का समाधान सुनों मित्र सूत्रजी श्रीभगवतीजी के शतक पहिला उद्देश सातवां में गर्भ जीव के अधिकार में सूत्रपाठ ऐसा है ( तहारूवं समण-स्सवा माहणस्सवा ) यहां पर भी माहण शब्द श्रावक शब्द को कहा है और श्रीठाणांगजी तथा अनेक सूत्रों में माहण नाम श्रावक को कहा है तैसे ही यहां पर जानना. तथा तीजा पाठ में प्रतिग्राही तथा रूप असंजति अविरति अप्रतिहत प्रत्या ख्यान न करा पाप जिसने ऐसा अप्रत्याख्यानी को ग्रहण करना और पिंड प्रथम पाठ में शुद्ध निर्दोष, दूसरे पाठ में अशुद्ध दोष, तीसरे पाठ में शुद्धाशुद्ध निर्दोषा निर्दोष दोनों जानना और मोक्ष अर्थे प्रतिलाभना तीनों पाठों में है. यहां पर फिर आप कहोगे कि माहण शब्दे हम श्रावक ग्रहण नहीं करते हैं तो कहिये पूर्वोक्त दोनों पाठों में तो तथा रूप साधु के लिये पूछा और तृतीय पाठ में तथा रूप असंजति अविरति अप्रत्याख्यानी की पूछा कि, अब कहो उक्त श्रावक को देने

से क्या फल होगा अगर कहोगे कि उक्त श्रावक का दान का निर्णय तृतीय पाठ में जानते हैं तो यह आपका जानना श्री सूत्रजी से विरुद्ध संभवै है कारण कि तृतीय पाठ में तथा रूप असंजति यावत अप्रत्याख्यानी का दानफल का निर्णय है और उक्त श्रावक को श्री सूत्रजी में जगह २ अपचखा संयती व्रतावृती प्रत्याख्याना प्रत्याख्यानी कहा है आप उसे तृतीय पाठ में कैसे घुसेड़ सकते हो और वित्त चित्त अरुपात्र तीनों शुद्ध होने से उत्कृष्ट दान की रसायन पकती है सो प्रथम पाठ में एकांत निर्जरा कही और उक्त वित्त चित्त पात्र में से चित्त शुद्ध भाव लाभना विशेषण से मोक्षार्थे जानना. वित्त अशुद्ध अफासुक अनेषणीक वस्तान बहुत निर्जरा अरु अल्प पाप यहां पर बहुत निर्जरा की अपेक्षा से अल्प पाप की अपेक्षा बहुत निर्जरा समझना सो दूसरा पाठ में कहा और पात्र शुद्ध सो पूर्वोक्त तथा रूप समण माहण जानना. तृतीय पाठ में चित्त भी मिथ्या संकल्प से अशुद्ध वित्त भी शुद्धाशुद्ध अनियम वास्ते अशुद्ध और पात्र अशुद्ध सत्यच तो तथा रूप असंयति अविरति अप्रत्याख्यानी है इसलिये एकांत पाप कहा, यहां पर एकांत पाप से मिथ्यात्व जानना, कारण कि दातार श्रावक है और श्रावकों के १७ पाप देशथकी छूटा है मिथ्यात का पाप देशथकी नहीं छूटता है वह तो सर्व थकी छूटता नहीं तो सर्वथकी लागे किंतु देशथकी नहीं लागे सो तो श्रावक के सूत्र में है। नहीं है वास्ते गुरु की बुद्धि मोक्षार्थे देवे जिनने . एतन सो मे पात्र कल्पे कल्पद । कहा है यहां पर कहोगे कि श्रावक होकर तथा रूप असंयति को

गुरु की बुद्धि कर निर्जरार्थे अर्थात् मोक्षार्थे दान कैसे देसका है तिसका समाधान ऐसा है कि यहां तो पृच्छा की रचना है देने न देने की कथन नहीं है ऐसी पृच्छा की रचना श्री सूत्रजी में जगह २ आती है जैसे कि श्रीदशा श्रुतस्कंधजी में कहा है कि साधु रात्रि को भोजन करे तो सबलो दोष लगे तैसे ही मैथुन सेवे तो तथा दश प्रकार की हरी लीलोतरी खाय तो सबलो दोष लगे अब देखिये साधु होवे सो रात्रि भोजन वा मैथुन कैसे करे सचित दश प्रकार की हरी कैसे खावे परंतु उदय भाव के जोर से यह पूर्वोक्त काम करे तो सबलो दोष लगे ऐसा कहा है तथा श्री आचारांगजी सूत्र में श्री निशीथजी सूत्र में अनेक नकरने लायक कामों को पूंछा है और उसका प्रायश्चित्त कहा है अब देखिये साधु को न करने लायक काम करना कैसे संभवे, परंतु कर्म गति विचित्र है. उदयभाव की प्रबलता से दोष लग जावे है तैसे ही कोई भद्रिक श्रावक तथा रूप असंजति की क्रिया आडंबर देख कर मिथ्यात्व मोहनी कर्म के उदय गुरु की बुद्धे मोक्षार्थे पूर्वोक्त दान देवे तो मिथ्यात्व को पाप लगे यह पूंछा की रचना जानना परंतु यह अनुकंपादान का प्रश्न नहीं है क्योंकि उक्त तीजा पाठ के अर्थ में यह गाथा है ( मोक्खत्थं जंदाणं तं पैएसे विहि समक्खाओ अणुकंपादाणं पुण जिणहिनंकयाइ पडि सिद्धं ) इससे स्पष्ट है कि अनुकंपा अर्थे दान का कहीं भी निषेध नहीं है और आपने तथारूप शब्द को मूल से उड़ा दिया सो क्या जानिये. यहां पर आप कहोगे कि असंयति अविरतीपना ही हम तथा रूप मानते है पाखंड भेष का कारण

नहीं जिसका समाधान देखिये, प्रथम पाठ में साधु रूप ममत्त
धारण को रजोहरण मुहपत्ती अर्थात् मुखवस्त्रिका आदि
स्वलिंगी पणा नो वेष और असंयति अविरति अप्रत्याख्यानी
का गुण सहित को प्रति लाभने से निर्जरा रूप लाभ कहा है
कि स्वलिंगी का वेष बिना संयति विरति प्रत्याख्यानी पना
का गुण सहित को प्रति लाभने से निर्जरा रूप लाभ कहा
है सो कहां. यहां पर स्वलिंगी साधुपना का वेष बिना संयमादि
गुण पावे जिनको प्रति लाभने से निर्जरा और फल कहोगे
तो असंयति अन्य लिंगी का वेष में भावे साधुपन आवे केवल
ज्ञान उपजना कहा है । साक्षी श्री भगवतीजी के शतक ९
वे में । असोच्चा केवली का अधिकार में परंतु यहां ऐसा कहा
है कि वह दीक्षा का उपदेश देवे लेकिन आप चेला न करे
अब मतिक सोचो कहा अन्य वेष का कारण नहीं होवे तो चेला
क्यों न करे सो विचक्षण स्वयं विचार लेवे है तथा श्री
पन्नवणाजी का पहिले पद में अन्यलिंग सिद्ध कहा है तथा गृही
लिंग सिद्ध कहा है अब देखिये अन्यलिंगी गृहलिंगी के
वेष में भावे साधुपना आवे जिससे केवल ज्ञान उपजे सिद्ध
कहा है अब आपके कहा अन्य वेष का कारण नहीं है तो वे
अन्यलिंगी गृहलिंगी के वेष में संयति विरति आदि साधु
पना का गुण [illegible] क्यों नहीं कहते हैं ?
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

पूर्वोक्त ४ चारित्र ६ नियंठा पावे तो हैं परंतु अतिशय ज्ञान विना खबर न पड़े इससे वंदना संभोग करने योग्य नहीं जानकर वंदनादि नहीं करते है तो कहिये केवली तो सर्वज्ञ है यह उक्त अन्यलिंगी गृहीलिंगी में भावे साधुपना का गुण जान कर संभोग करे कि नहीं और अन्य छद्मस्थ साधु वा श्रावकों को वंदना करने की संभोग करने की आहारादिक देने की आज्ञा देवे कि नहीं सो कहो. यहां पर आप को लाचार होकर कहना पड़ेगा कि श्रीकेवलीजी अन्यलिंगी गृहीलिंगी में भावे साधुपना का गुण जाने परंतु संभोग न करे अरु अनेरा छद्मस्थ साधु श्रावकों को उक्त बोलों की आज्ञा न देवे, कारण यह कि स्वलिंगी साधुपना का वेष विना व्यवहार अशुद्ध तिसवास्ते तो सोचो कि श्रीकेवलीजी भी तथा रूप वेष का कारण मानते हैं और आप कहते हो हमारे तथा रूप वेष का कारण नहीं अब हम जिज्ञासुओं को भलावन करते हें यहां पर चउभंगी उत्पन्न होती है सो निपुण बुद्धि से गुरुगम्य पूर्वक जानना और श्री केवलीजी का कथन सब को सर्व प्रकार से मान्य है सो सर्वस्तनः समझते हैं और श्री आवश्यकजी सूत्र में सम्यक्त का ५ अतिचार कहा है वहां पर पाखंडी की प्रशंसा करे तथा संस्तव परिचय करे तो अतिचार लगे, वहां भी तथा रूप वेषधारी समझना केवल असंयमादि गुणों से ही सिर्फ तथा रूप मानोगे तो श्रावक न्याती गोती दासीदास तिर्यंच मंगता भिखारी सेठ गुमास्तादि सर्व प्रायः असंयति अविरति है और तिनका परिचय किया अतिचार लागा चाहिये और

ऐसे अतिचार लगेगा तब श्रावकों का श्रावकपना सम्यक्तपना कैसे रहेगा सो मध्यस्थ बुद्धि से सोचना. फिर श्री निशीथजी सूत्र में कहा है कि जो साधु अन्य तीर्थी गृहस्थी के साथ विहार करे तथा गोचरी जावे तो मासिक प्रायश्चित्त आवे तथा श्री आचारांगादि अनेक सूत्रों में जगह २ अन्य तीर्थी के साथ रहने आलाप संलाप करने वर्जित किये हैं और आप पांच स्थावर, सूक्ष्म, बादर, तीन विकलेन्द्रिय, मरिकमत्सर, चिड़ी, कबेड़ी, प्रमुख, सबको अन्य तीर्थी गिनते हो. साधु श्रावक सिवाय सब अन्य तीर्थी हैं और श्री प्रभुजी ने तो एक ही रात अन्य तीर्थी के साथ रहते हुए को चातुर्मासिक प्रायश्चित्त फरमाया है, तो आपके साधु सर्वदा जान बूझ के जावजीव तक अन्य तीर्थी के साथ रहते हैं तिनमें साधुपना आपके कहने के मुताबिक कैसे रहेगा? यहां पर आप को यही कहना पड़ेगा कि ३६३ पाखंडी अन्य तीर्थी मिथ्यात्व मत का स्वामी तिनकी संगत किया, सम्यक्त में शंका पड़े तिन आश्री कहा है तैसे ही साधु के लिये जानना, परन्तु यहां साधु श्रावक सिवाय सर्व जीव अन्य तीर्थी आश्री नहीं कहा है तो देवानुप्रिया तनिक निष्पक्ष होकर सोचो. श्री भगवतीजी के तीजे पाठ में भी तथा रूप को ३६३ पाखंड वेष धारिक पाखंड प्रवर्तक असंयति अविरति का प्रतिलाभ विशेषण से गुरु की बुद्धि से निर्जरार्थे दान देवे तिसका एकांत पाप सो मिथ्यात्व लगे ऐसा कथन है. परन्तु अभ्यागतादि को अनुकंपा आन के दान देने वालों को पाप नहीं कहा है. यहां पर आप कहोगे कि यह तो तुम्हारी युक्ति है । तो कहिये दूसरा पाठ है न्यारा

समण माहण को अफासुक एषणीक देने अल्प पाप बहुत निर्जरा कही इस पाठ को जैसा बोला है तैसा मानते हो कि कोई युक्ति मानते हो. कारणे अकारणे जानते अजानते इत्यादि जो मानते हो तो तीसरा पाठ की भी युक्ति सची है सो क्यों न मानो यहां पर आप कहोगे कि दूसरा पाठ हम को शंका सहित ज्ञान होना है सो तीसरा निशंक क्यों मानते हो ऐसे सूत्रजी में शंका वेदना अच्छा नहीं है । पृष्ठ छठा की पंक्ति १४ वीं से १८ वीं पंक्ति तक की समीक्षा।

इसमें आपने सूत्रजी श्री निशीथजी के १५ वें उद्देशा के बोल अर्थात् सूत्र ७४ तथा ७५ की साक्षी दी है सो आपका यह कथन असमीचीन है कारण कि पृच्छक का अभिप्राय गृहस्थों के लिये पूछना है जिसपर आपने साधु की मिसाल दी सो अयुक्त है पृष्ठ ६ की पंक्ति १६ वीं से २२ तककी समीक्षा।

यहां पर भी आप अपनी चाल तो सूत्र चले श्री सुयगडांगजी के ११ वें अध्ययन की २० वीं गाथा की साक्षी देकर आधी गाथा का भावार्थ लिखा और आधी को छोड़ दिया. छोड़ने का कारण तो स्पष्ट है लेकिन भावार्थलेख से ही आप की गलती मालूम होती है कि २० वीं लिखी तो आधी का भावार्थ क्यों छोड़ा, यद्यपि छोड़ना ही था तो १६ वीं गाथा लिखनी थी फिर २० वीं गाथा का पूरे २ पद का भावार्थ से लिखा है कि गृहस्थी को दान देवे उसकी प्रशंसा कर न उसे दान को हिंसा लग. अब इचित उस गाथा के मुताबिक म गृहस्थी के शब्द को तक ही नहीं है अब हम

के बाद दूसरे दिन श्रीकेशीश्रमणकुमार स्वामीजी को वंदना नमस्कार कर अपने घर जाने लगा उसके बाद श्रीकेशीश्रमणकुमार स्वामी ने कहा कि हे राजन् अभी तुम धर्म के विषे में रमणीक हो पश्चात् अरमणीक मत होना तिसपर इक्षु क्षेत्रादि ४ दृष्टांत दिया उसके बाद राजा प्रदेशी ने कहा कि हे स्वामी मैं अरमणीक नहीं होऊंगा इस तरह रमणीक ही रहूंगा तिस रीत में कहा कि श्रमण ब्राह्मण भिक्षुक मंगता भिखारी को दान देऊंगा और और १२ व्रत श्रावक का चोखा पालूंगा ऐसे केशीश्रमण मुनिराज को कहा है सो सूत्रपाठ यहां पर लिखते हैं ( अहणं सेयं विया पामोक्खाइ सत्तगा मसह साइं चत्तारि भागे करिस्सामि एगं भागं श्रंते उरदलइस्सामि एगेणं भागं कोठागारे इस्सामि एगेणं भागं महइ महालयं कुडागारं सालंकरिस्सामि तत्थणं बहु पुरिसेहि दिएणभत्ती भत्त वेयणं हिंवि उलं असणा ४ उवंर कडवेत्ता बहुणं समण माहण भिक्खूपाणं पथियं पहियाणय परिभाय माणे २ बहू हिंसी लवय पच्चखाण पोसहोववासेहि जाव विहरिस्सामि तिक ट्टु जामेव दिसं पाउ भूये तामेवदिसं पडिगएतंतेणं पयसिराया कल्लंपाउं जावते यस्सा जलंते सेयं वियापाव मोक्खाइं सत्तगाम राहस्साइं चत्तारिभाए करेइएगं भागं वलवाहणस्सदलयइ जाव कुडागारसालं करे इतत्थणं बहूहिं पुरिसेहिं जाव उवक्खडावेत्ताबहुणं समण माहणए जाव परिभाय माणे विहरइ ) इति । मुग्धमाथः अब देखिये इस पाठ में ऐसा कहा है कि हे स्वामी मेरे श्वेताम्बिका प्रमुख सातसहस्र ग्राम खालसे हैं तिसका ४ भाग करूंगा, एक भाग मेरे हाथी घोड़ा निमित्त और

एकभाग जनाना अर्थात् रानियों के लिये. एकभाग जजाना के लिये और एकभाग लवण शाखादि माहल मो अन्नेण मंगता भिखारी के लिये अन्नादिक ४ आहार पैदा करवाके दान देऊंगा और श्रावक का दृढ़ बेला निरतीचार पालूंगा. अरमणीक नहीं होऊंगा. यही दान और व्रत रमणीकपना में बतलाया. अब कहिये वर्तमान में मटेजी किसको देरहा था और कौन लेरहा था जो केशीश्रमणजी स्वामी ने निषेध नहीं किया और उपदेश न दिया. यदि एकांत पाप होता तो अवश्य केशी स्वामी कहते हे राजन् तीन भाग तो संसार के लिये अर्थ दंड में है सो अर्थ दंड श्रावक के छुटना मुश्किल है परंतु तूं धर्म मात होकर आरम्भ सहित दान देकर चतुर्थ भाग रूप अनर्थ दंड को सेवन करना क्यों चाहता है इसलिये दान मत देना ऐसा क्यों न कहा जानो कि वह कैसे सकते हैं आरम्भ दान में मुनि को प्रत्यक्ष वा परोक्ष मध्यस्थ रहना श्रीभगवंतों ने फरमाया है । पृष्ठ ६ पंक्ति २२ वीं से लेकर पृष्ठ ७ वें की पंक्ति ६ वीं तक की.

( समीक्षा ) आपने सुपात्र और कुपात्र दो पात्र लिखा परंतु यह नहीं लिखा कि सुपात्र इनको कहते हैं और कुपात्र इनको कहते हैं और कुपात्र तथा सुपात्र का क्या लक्षण है और यह दो पात्र अनुकम्पाजी में कहे हैं इसलिये यह साधारण बातें है यह सबको मान्य है कि सुपात्र की बराबरी कुपात्र कैसे कर सक्ता है फिर आपने लिखा है कि जैसे विपाक सूत्र के पहिले अध्ययन में गौतम स्वामी ने पूछा कि मृगालोडा ने पूर्वभव में क्या कुपात्र दान दिया था जिससे इस भव में

ऐसे दुखी हुवा यह आपका लिखना विचार शून्य है क्योंकि श्रीविपाकजी में तो ऐसा पाठ है कि (किंवा दच्चा किंवा भोच्चा किं वा समायरित्ता।) इसका संक्षेपार्थः। किं दत्त्वा अर्थात् क्या दिया कुपात्रदान अथवा सुपात्र के विषे अमनोज्ञ आहार किं भुक्त्वा अर्थात् क्या भोगा मांसादिक अभक्ष्य आहार किं समाचरित्वा वा अथवा क्या कुपात्र वैरयादि संग सम्यक् प्रकारे आचरण किया जिसके प्रभाव से मृगलोडा ऐसा दुखी हुआ।

इसका भावार्थ-मृगालोडाने हे प्रभु पूर्वभव में क्या दिया या यहां पर कुपात्र दान अथवा अमनोज्ञ आहार दुःख किं पृच्छा से स्पष्ट जानते हैं परंतु मूलाक्षरों से कुपात्र दान का शब्द नहीं निकलता है यदि कहोगे कि कुपात्र दान का शब्द ऊपर से ग्रहण करते हैं तो एक यहां पर अपने मन माना अर्थ ऊपर से ग्रहण कर लिया है तैसे सर्वत्र ग्रहण क्यों नहीं करते हो मूलपाठ का हटवाद क्यों करने लग जाते हो जैसे किंवादच्चा इस पाठ में कुपात्र दान वा अमनोज्ञ दान ये अक्षर अपेक्षों में रहे हैं तैसे ही श्रीसिद्धांतों का सर्व पाठों में सोपक्षित वचन समझना कारण कि आप्तों का वाक्य सोपक्षित ही होता है फिर आपने इस पाठ की जगह एकही पाठ का भावार्थ लिखा सो प्रकट अल्पज्ञों को भ्रम में डालने के लिये लिखा है ऐसा मालुम होता है कारण कि परस्पर संबंध टूटने से अन्य का अन्य अर्थ प्रति भापण होजाता है अब हम अपने प्रिय पाठक वृन्दों के बोध के लिये श्रीसूत्रों के यत् किंचित् वाक्य लिखते हैं यह विदित रहे कि तेरापंथी सुपात्र

सिर्फ साधु को ही मानते हैं और साधु सिवाय सब को कुपात्र मानते हैं उनका यह विचार और धारणा भी सूत्रों से बिलकुल खिलाफ हैं कारण कि किसी सूत्र में ६३ श्लाघा पुरुष कहा है श्लाघनीय अर्थात् प्रशंसनीय पुरुष को श्लाघा पुरुष कहते हैं और वह सर्व साधु नहीं होते हैं तब साधु सिवाय सब को कुपात्र कहने वाले के हिसाब से उक्त ६३ श्लाघा पुरुषों को भी कुपात्र कहना पड़ेगा अब देखिये पुरुषोत्तम पुरुषों को कुपात्र मानना या कहना यह कितने कुपात्रपन की बात है फिर श्रावक भी साधु नहीं हैं और उनको भी दशाश्रुतस्कंधजी में श्रमण भूत कहा है श्री उवाईजी में सुसाधु बतलाया है तथा श्री ठाणांगजी में अम्मापिउ समान कहा है तथा वृद्धाम्नाय से श्री परमेश्वरजी के लघुपुत्र श्रावक को कहते हैं जिन श्रावकों को कुपात्र कहना यह कितनी मूर्खता की बात है फिर आपकी श्रद्धान के हिसाब से श्रावक को साधु की संगति परिचय भी नहीं करना चाहिये या ज्ञान सिखलाना तथा दीक्षा देना भी नहीं चाहिये क्योंकि जो कुपात्र की संगति करे वह कुपात्र और जो चोर की संगति करे सो चोर ऐसा समझिये और कुपात्र को ज्ञान सिखलाना या दीक्षा देना शास्त्रों में प्रकटपने वर्जित किया है और आप मानते ही हो क्योंकि गोशालाजी को श्रीभगवंतजी ने ग्रहण किया सो कुपात्र को ग्रहण करने से भगवान को चूका कहते हो अब विचारो कि उक्त श्रावक को कुपात्र कहने से आगे धर्म मोक्ष मार्ग का अभाव होजावेगा सो सबुद्धि ने सोच लेना फिर लोकपाल त्रायत्रिंशक अनुइन्द्र इन्द्र अहमेन्द्रादि सम्यग

दृष्टिदेव सबको कुपात्र कहना या मानना क्योंकर संभव हो सकता है ऐसा २ असंभव वार्ता लौकिक लोकोत्तर विरुद्ध मत पक्ष के नशे बिना सयाना अर्थात् बुद्धिमान कौन मानसकता है फिर सुपात्र के तीन भेद कहे हैं सो ऐसे हैं ( उत्तम पत्तं साहु मझमपत्तं पसावया भणिया । जहन्नपत्तं इयर दिति विरं पत्तं मुणेयव्वं १ ) इसका संक्षेपार्थ ऐसा है कि उत्तम सुपात्र साधु मध्यम सुपात्र श्रावक देशव्रती और जघन्य सुपात्र अविरति सम्यग् दृष्टि ऐसे श्री सिद्धान्तों में प्रगट कहे हुए भी अपने मतपक्षस्थापन के लिये साधु सिवाय सब को कुपात्र मानना यह बड़ा बचपन है और पूर्वोक्त श्रावकादि की आशातना करना है और श्री सूत्रजी में जगह २ वर्जा है जैसे कि (सावयाणं आसायणाए सवियाणं आसायणाए देवेणं आसायणाए देवीणं आसायणाए ) इति श्री आवश्यक सूत्रे। और आशातना करने का फल अबोधपन पावनां श्री सूत्रजी में जगह २ कहा है सो निर्णय करलेना तथा श्री दशाश्रुतस्कंध जी के नवमां अध्ययनजी में ३० महामोहिनीय कर्म बंधने का स्थान कहा है तिसके २६ वें बोल में कहा है कि ब्रह्मचर्य पाली ने ऋद्धिवंत देव हुआ है तिनों का आवर्णवाद बोले ते जीव महामोहिनी कर्म बांधे अब विचारो कि उक्त महर्द्धिक इन्द्रादि देवों को कुपात्र मानने और कहने सिवाय फिर क्या अवर्ण वाद होगा इसके लिये हृदय में कुछ भय तो लाओ। पृष्ट ७ पंक्ति ७ वीं से २८ वीं तक की समीक्षा।

इस में कोई वाक्य विशेष समीक्षा योग्य नहीं है सिर्फ यह लिखा है कि यदि आप गृहस्थी आदि को दान देने में

सूत्रों के प्रमाण से लाभ सिद्ध कर देवें तो हम आपको धन्य-वाद देवेंगे इसपर हमारा इतना ही कहना है कि साधु सिवाय दान देने में पुण्य प्रकृति का लाभ होता है वे वचन ऊपर लिख चुके हैं यदि तुम मतपक्ष को दूर कर समबुद्धि से विचार कर मान लेवेंगे तो हम धन्यवाद देना ही समझेंगे. पृष्ठ ८ पंक्ति पहिली से ८ मी तक की समीक्षा।

यहां पर आपने साधुओं का उदाहरण दिया जिस में आप लिखते हो कि साधु भिक्षा लावे उसमें से यदि किसी तरह बच जावे तो वह आहार हर किसी को देकर इस धर्म को हासिल करसक्ते हैं सो आपके कहने मुताबिक यदि धर्म होता होवे तो साधु वैसा क्यों नहीं करते आपका यह लिखना अनुपयुक्त है इसका समाधान सुनिये. देखिये देवानुप्रिया स्वाध्याय करने में व्याख्यान बांचने में तो आप भी एकांत धर्म ही मानते हो अब कहिये पहर रात्रि गये के बाद कोई मुनि महाराजों से विनय करे कि हे दयालु ! मुझे आप उच्च स्वर से स्वाध्याय वा व्याख्यान वर्णन करें तो मैं आप के पास दीक्षा लेऊं तो साधु उनको स्वाध्याय वा व्याख्यान क्यों नहीं सुनाते हैं धर्म तो साधुओं को ही करना है परन्तु पहर रात्रि पश्चात् उच्चस्वर से बोलने की प्रभु की आज्ञा नहीं वैसे आहा-रादिक हर किसी को देने की प्रभु आज्ञा नहीं इससे न देवें परन्तु गृहस्थी अभ्यागतादिकों को अनुकम्पा निमित्त दान देवें जिस में एकांत पाप कैसे होवे पृष्ठ ८ पंक्ति ९ से १८ वीं तक की समीक्षा।

आपने लिखा है कि भगवतजी के वर्षीदान तथा जन्मा

भिषेक का स्नान यह दोनों रीति परम्परा से चली आती है और एकसी है यदि इस रीति के होने से ही सुवर्ण आदि का दान देने में धर्म मान लिया जावे तो स्नान करने में भी धर्म मानना पड़ेगा यह आपका लिखना निःकेवलदान से द्वेष दर्शाता है तनिक सोचो तो कि स्नानादि तो पूर्वभव के भोगावली कर्म उदयभाव में है और अर्थ पाप है तैसे दान देना सो कौनसे कर्म का उदयभाव है सो कहो तथा श्री भगवंतजी ने केवल ज्ञान पाये के बाद स्नान में पाप बतलाया है और सर्वथा छोड़ने वाले को सर्वथा त्याग कराया है और देशत्यागी को प्रमाण कराया है सो शास्त्रों में प्रसिद्ध है तैसे दान को भी निषेधते और उक्त रीति से त्याग कराते तो आपका कहना मिलता सो तो निषेधना छोड़के श्रीमुख से वर्णन किया है कि सावद्यदान भी नहीं निषेधना इससे सिद्ध है कि स्नान और दान दोनों बराबर नहीं हैं किन्तु दान देना यह आर्य पुरुषों की करणी है और अनुकंपा तथा उचित दान सर्वत्र जैनागमों में अनिषेध हैं तिससे श्री भगवान देते पाप जाने तो किसलिये देवे फिर जन्माभिषेक स्नान और संवत्सर दान परम्परा से एकसे हैं इससे जैसे दान और स्नान में बराबर पाप मान लिया जावे तो परम्परा से श्री तीर्थंकरजी के घनी वार्ता एकसी होती हैं जैसे कि दीक्षा लेते हैं उस समय श्री तीर्थंकर देवजी चतुर्थ भक्तादिक तप परंपरा से ग्रहण करते हैं दीक्षा लेने के बाद मनः पर्यवज्ञान नियम से परंपरा से उत्पन्न होता है श्री तीर्थंकर नियम करके परंपरा से केवल ज्ञान पाते हैं तत्पश्चात् गणधर वा तीर्थ नियम

करके परंपरा से स्थापन करते हैं. कर्मक्षय करके मोक्ष भी परंपरा से पधारते हैं यदि संवत्सरी दान का देना परंपरा रीति से है और इसलिये पाप में गिना जाय तो ऊपर लिखे एकांत धर्म के सब बोलों में पाप मानना पड़ेगा सो बन नहीं सकता ॥ इति श्री द्वितीय प्रश्नोत्तरस्य समीक्षा ॥

## अथाग्रे तृतीय प्रश्नोत्तरस्य समीक्षा लिख्यते ।

पृष्ठ ८ वा की पंक्ति २३ वीं से पृष्ठ ६ में की १३ वीं पंक्ति तक की ( समीक्षा ) इसमें आपने लिखा है कि श्री भगवान महावीर स्वामी के प्रथम पड़िमाधारी श्रावक आनंदजी ने संथारा ( अनशन व्रत ) में कहा है कि मैं गृहस्थ हूं यह वार्ता उपासक दशा सूत्र के प्रथम अध्ययन में कहा है और गृहस्थी को असनादि चारों आहार देने में श्रीभगवंत ने पाप कहा है यहां पर फिर आप कहेंगे कि आनंदजी को सूत्रजी में गृहस्थी कहा है तो कुछ न कुछ आनंदजी में गृहस्थी पना होगा ( इसका समाधान ) सुनो देवानुप्रिया आनंदजी के रजोहरण की दाढी खुली तथा शिखा ( चोटी ) गृहस्थी का चिन्ह है जिनसे गृहस्थी जानी जाती तीन करण तीन जोग से १८ पाप का त्याग ४ आहार का त्याग यावत् शरीर का त्याग आनंदजी के उस वक्त था तब कहो दान का पाप लागे। कहां आपका [illegible] है पर इतना हुवा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] लिये दूसरे का [illegible] सूत्रवाला ने उत्तर देते हैं सो बहुत स्पष्ट करते हैं अब आपने यहां पर श्रीआनंदजी

का उदाहरण दिया है वह असमीचीन है क्योंकि श्री उपासक दशांग सूत्रजी में प्रथम अध्ययन में आनंदजी ने जहांतक सम्यक्त व्रत नहीं लिया था तहां तक उक्त सूत्रजी के पाठ में ( आनंदेगाहावइ ) ऐसा लेख है और सम्यक्त वृत लेने के बाद ( समणोवासयेजाए ) ऐसा पाठ है वा ( आनंदे समणोवासए) ऐसा पाठ है अब विचारो कि अनशन व्रत में अपने तांई गृहस्थी कहा है सो क्या उस वक्त आनंदजी में श्रावकपन नहीं था ऐसा जानते हो अगर ऐसा नहीं तो नसीथजी के सारंभी सपरिग्रही गृहस्थी को तथा आनंदजी को बराबर कैसे कहते हो यह आपका कहना सूत्रजी से विरुद्ध है तथा आनंदजी जैसे परमोत्कृष्ट प्रतिमा प्रतिपन्न श्रावक पर आलका देना है तथा देखिये देवानुप्रिय आनंदजी को गृहस्थी कहने मात्र से ईग्यारह पड़िमाधारी को देने में पाप मानोगे तो कहिये शास्त्रों में जीव के दो भेद कहे हैं सो सिद्ध तथा संसारी अब संसारी जीव में निगोदीये जीव से लेकर १४ गुणस्थान वाले जीव को ग्रहण करते हैं अब विचारो कि निगोदीये जीव के बरोबर १४ गुणस्थान वाले कैसे हो सक्ते हैं सूत्रजी के कहने से आप के गुरु भी संसारी जीव है अब कहो उनपर भी संसारी की उपाधि जो कि विवाह शादी युद्ध व्यापारादि की घट शके लेकिन कैसे घटेगी तैसे आनंदजी के लिये जानोगे फिर श्रीनसीथजी के १५ में उद्देशा के ७४ वें बोल की साक्षी दी सो भी पूर्ववत् अनुप युक्त है तथा श्री भगवती सूत्र के ८ में शतक के छठे उद्देशा की साक्षी दी सो सूत्र विरुद्ध है कारण कि उक्त स्थान पर तो तथा रूप असं·

यति अविरति अपच्चक्खानी को प्रतिलाभे अर्थात् गुरु बुद्धि निर्जरार्थे देवे तिनको एकांत पाप नो मिथ्यात्व कहा है अब यह उदाहरण ४२ दूषण टाल आहार के भोजी प्रतिमाधारी उत्कृष्ट श्रावक तपस्वी पर कैसे घट सकती है ऐसी २ अघटित घटना घटानी तो अघटित जानना, उक्त प्रतिमाधारी को ४२ दूषण टाल कर देने वाले को एकांत पाप होने का सूत्रपाठ घटित था ॥ इति श्री तृतीय प्रश्नोत्तरस्य समीक्षा ॥ अथ चतुर्थ प्रश्नोत्तरस्य समीक्षा प्रारं ॥ पृष्ठ ६ वें की पंक्ति १७वीं से लेकर २१ वीं तक की समीक्षा। इसमें आपने लिखा है कि प्रथम तो साधु को फांसी देने का प्रश्न करना ही धर्म विरुद्ध है यहां तक आपने पर्दन पलटा देखा लेकिन पग पलटा नहीं देखा कारण कि उक्त प्रश्न करना ही धर्म विरुद्ध है तो साधु की धर्म बुद्धि से फांसी खोलने वाले को एकांत पाप कहना और पुष्ट करना यह कितना बड़ा धर्म विरुद्ध वचन है यह आपने न देखा इसलिये ऊपर लिखी हुई मिसाल अनुपयुक्त है फिर लिखा है कि साधु को फांसी कौन देवे यह भी आपका लिखना जैनशास्त्रों से अनभिज्ञता दर्शाते है कारण कि श्री अंतगड़-दशांगजी में गजसुकमाल मुनि को सोमल ब्राह्मण ने मारा है यह बात जैन [illegible] छोटे २ बालक भी जानते हैं तो आपका लिखना कैसे सच्चा माना जाय, पुनः आपका ने प्रश्न करना लिखा यह भी लिखना भी सूत्र [illegible] से अनभिज्ञता से है क्योंकि [illegible]
ऊपर लिखी बात [illegible]
[illegible]

श्रावक श्राविका अन्य तीर्थीकादिकों ने किया है तिसका श्री भगवंतजी ने न्याय पूर्वक खुलासा फर्माया है तिसका दृष्टांत कहां तक लिखें परन्तु किसी को श्री भगवंतजी ने आपकी नाई धर्म विरुद्ध वा अज्ञानता से प्रश्न करना इत्यादि शब्द नहीं फरमाया है. यहांपर आप कहोगे कि कौनसा सूत्रजी में साधु को फांसी आदि से मारने का किसने प्रश्न किया है तिसका समाधान सूत्रजी श्रीमद्भगवतीजी के शतक ६ वां उद्देश ३४ वें में श्री गौतम स्वामी ने श्री भगवान से प्रश्न किया है सो सूत्रपाठ ऐसा है ( पुरिसेणं भंते इसिंहणमाणे किं इसिं वेरेणं पुट्ठो इसि वेरेणं पुट्ठे गो० नीयमंताव इस्सं वेरेणं पुट्ठ अहवा इस्सं वेरेयणो इति वेरेणयपुट्ठे ) इसका भावार्थ— पुरुष हे भगवन् ऋषि यानि साधु को फांसी आदि से हण-ते थकां क्या ऋषि का वैर से फरस्या कि नहीं ऋषि का वैर से फरस्या, अथवा ऋषिवैर से अनेरा घना जीवों के वैर से फरस्या. तात्पर्य ऐसा है कि एक साधु को हणे तिसको अनंता जीवों का वैर लगे इससे जिज्ञासुओं को स्पष्ट विदित हो जावेगा कि एक साधु को शाता देवे या बचावे तिसको अनंत जीवों को शाता देने का या बचाने का फल होता है अब देखिये श्री गौतम स्वामी ने भी ऋषि को हनने का प्रश्न किया है हनो चाहे फांसी देकर के चाहे अन्य किसी उपक्रम से अब आपका कथन प्रमाणे तो श्री गौतम स्वामी ने भी धर्म विरुद्ध और अज्ञानता से प्रश्न किया कहना पड़ेगा । पृष्ठ ६ वें की पंक्ति २३ वीं से पृष्ठ १० वें की पंक्ति ३ री तक की ( समीक्षा )

देते हो सो भी तदन स्वकपोल कल्पित है क्योंकि अमूनता आहार अनजाने ग्रहण कर लिया पश्चात् जानने में आया तो परट देना परंतु भोग वना नहीं इस न्याय स्यायन किसी ने फांसी खोल दीवी तो जीवितव्य असूजता होगया तव तो उक्त साधु को जीना ही नहीं कल्पे तव क्या करे सो सोचो फिर आपका कहना यह है कि साधु गृहस्थी के सहाय को अनुमोदन नहीं करे तिसवास्ते फांसी खोलने वाला को पाप कहते है तिसका समाधान साधु तो गृहस्थी को धर्म होवे सो पिण कार्य घणा न वंछे साचो सूत्रजी श्री उत्तराध्ययनजी के अध्ययन १५ वां गाथा १८ वीं में सो सूत्रपाठ ( अचणं रयणं चे व वंदणं पूयणं तहाइड्डि सक्कार सम्माणं मणसा· विन पत्थए १८॥ ) इसका टवार्थ ( अ ) चंदनादि के करी पूजवो वा वस्त्रादिक करी पूजवो ( र० ) मांडणनो रचवो निश्चे ( वं० ) वांदवोते गुणानो करवो ( पूं०) पूजवो (तं०) तिमज ( इ० ) लब्धिनी ऋषि अनादिक देवेकरी सत्कार सन्मान एतलावानां ( मं० मन करी नई न वांछइ कायाई करी सेवे नहीं १८ ) इसका भावार्थ. अव देखिये इसमे कहा कि साधु को गृहस्थी की वंदना सत्कार सन्मानादिक वंछणो नहीं परंतु गृहस्थी साधु को वंदना करे वा आदर सन्मान देवे तिनमें धर्म होवे कि नहीं तैसे ही साधु तो गृहस्थ को सहाय न वंछे पिण फांसी खोले, उपसर्ग टाले तिनको पाप किस न्याय तथा गृहस्थ के घर में ( सुंखडी ) मिठाई प्रमुख देख के साधु को नहीं वंछना कि मोक वैरावे उसको धर्म पुण्य है तैसे साधु फांसी आदि उपसर्ग टाले, परन्तु तिसको

धर्म पुण्य है जेकर आप साधु को सहाय देने में पाप मानते हो तो पूर्वोक्त वंदनादि कार्य क्यों कराते हो इस विषय में आपकी लीला विस्तृत है ज्यादा लिखने से क्या जरूरत फिर देखिये उक्त पांती की रस्सी भी गृहस्थी की है और उस से गृहस्थी खोले वा काटे जिसमें साधु को क्या पाप हुवा. यहां पर आप कहोगे कि साधु निमित्त खोले काटे जिसमें पाप करते हैं तो कहिये साधु गृहस्थी से वस्त्र मांगे और गृहस्थी साधु की धार से ज्यादा देवे तब साधु कहे इतना न चाहिये तब पुनः गृहस्थ कहे कितना चाहिये तब साधु चार पांच हाथादि बतलावे उतना वस्त्र गृहस्थी फाड़ देते हैं और साधुजी लेते हैं अब देखिये गृहस्थ ने वस्त्र किसके निमित्त फाड़ा यहां पर आप को यही कहना पड़ेगा कि साधु निमित्त फाड़ा तब तो वस्त्र फाड़ देने में भी पाप मानना पड़ेगा यहां पर आप कहोगे कि वस्त्र फाड़ देने में तो पाप नहीं है तो आप स्वतः समझ गये हो कि चार हाथादि वस्त्र गृहस्थी साधु निमित्त फाड़ देवे जिसमें पाप नहीं है तो आपके पुस्तक की पांती की रस्सी खोले काटे जामें पाप कैसे हो सकता है अपितु नहीं होवे । इति चतुर्थ प्रश्नोत्तर समीक्षा ॥

## अथाग्रे पंचम प्रश्नोत्तर समीक्षा लिखते ।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

जगह गाथा लिखी हैं अफशोस है कि जिसको इतना भी परिज्ञान नहीं है कि गाथा किसको कहते हैं और सूत्र किसे कहते हैं शायत उद्देश तो भूल के लिखा कह देंगे परन्तु उस गाथा की भूल किसपर डालेंगे बस इस बुद्धिमानी से पुस्तक लिखने का साहस कैसे किया होगा आश्चर्य तो यह है। अब हम नसीथ के द्वादश में उद्देश के प्रथम सूत्र में वा द्वितीय सूत्र में श्रीमन भगवंतजी ने जैसा भाव फरमाया है तैसा यहां पर लिखते हैं ( सूत्रपाठः जेभिक्खु को लुण वडियाए अणेयरं तमपाण जाइं तणपास एणवा मुंज पास एणवा कठ पास एणवा चम्मपास एणवा वेत्तपास एणवा रजुपास एणवा सुत्तपास एणवा बंधइ बंधंतं वासाइ ज्जइ १ ) इसका टबार्थः जे कोई साधु साध्वी ( को० ) करुणा अनुकंपानि मनिज्ञानें अनुकंपा निमित्त ( अ० ) अनेरो कोई ( त० ) त्रस प्राण जानिवे इन्द्रियादिक ने ( त० ) तृणादिक ते दर्भादिकना पासा बंधणने दोराइ करी ( मु० ) मूंजनी दोरी करी ( क० ) निपल खोडादिक अथवा लतादिक ( च ) चामडानी दोरी करी ( वे ) वेतने छाले करी ( र० ) रासडी ने फासे करी ( सु० ) सूत्र ने फासे करी एतला मार्गाने फासे करी ( ब० ) बांधे ( बं० ) बांधता ने ( सा० ) अनुमोदे इस दोसपन लागे नाकरी बांधता पामी आवे ? आंटो आवे २ पडे ३ बंधयाथ ४ परिताप ५ अंतराय होइ ६ बधन किया तडफडे ७ आ- पणने पराने डरे ८ मावने मांगडे करी पगादिक ने न्यूरे करे याते ९ अथवा देता लोक उडाइ करे १० इत्यादिक द्वितीय पदे बंधन या इनिस बांधे अथवा शिष्य अजाण होई अथवा

सणफयादि खांना ने पर्व अजाण होय ते हने बांधतां दोष न थी ॥ अथाग्रे द्वितीय सूत्रपाठः। (जे भिक्खुबंधलयं वा मुयइ मुयंतं वासाइज्जइ २) इसका टवार्थः (जे०) कोई साधु साध्वी (बं०) एतला पासेकरी बांध्या त्रस जीवने (मु०) मुके (मु०) मुकताने (सा०) अनुमोदे बितियपदे अनिदी गाढे बंधने करी तडफडे तथा अगन्यादि पले बहे करी मरता ने मुके अर्थात् खोले तो दोष नथी इसका तात्पर्य ऐसा है कि (कोलुणवडियाए) शब्द सो यहां दीन सनीयानि आजीविका निमित्ते जानना जिसकी साक्षी श्री दुःख विपाक सूत्र जी के प्रथमाध्ययन में श्री गौतम स्वामी गोचरी पधारे अरु भिक्षारी को देखा वहां ऐसा सूत्रपाठ है (कोलुणवडियाए) भिक्षा मांगे है सो दीन सनी यानि आजीविका के अर्थ मांगते हैं अनुकंपा अर्थ भीख मांगना कैसे बने पुनः श्री प्रश्नव्याकरणजी सूत्र के प्रथम संवर द्वारे प्रथम महाव्रत की चौथी भावना में कहा है साधु गोचरी करता हुवा (अदिण्णकलुणो) दीनपना रहित दयामणा रहित गवेषणा करे। इत्यादि (कलुण) शब्द वडियाए कहा है सो दीनवृत्ति आजीविका निमित्ते तथा मोह निमित्ते जानना तथा इन शब्द में स्वादिक दयुत्पादि जानना यहां एक ठाम कहांसे कि दया के अनुकंपा निमित्ते लिखा है और दीनवृत्ति आजीविका निमित्ते [illegible] है [illegible] दान [illegible] है [illegible]
[illegible] है [illegible]
[illegible] है
[illegible] है [illegible]

अविद्वानों का काम है जेकर आपको टवार्थ प्रमाण है तो इनहीज पाठ में द्वितीयपद का अर्थ है सो प्रमाण क्यों नहीं करते हो यहां पर आप को यही कहना पड़ेगा कि मूलपाठ से मिलता अर्थ प्रमाण है तो देखिये ( कोलुणवडियाए ) शब्द का अनुकंपानिमित्ते ऐसा अर्थ नहीं होसक्ता है जिसका खुलासा ऊपर लिख चुके हैं फिर यहां तो साधु का ३ करण है सो न्याय है क्योंकि साधु तो सर्वथा प्रकारे संसार के कार्यों से निवृत्त है परन्तु गृहस्थी अनुकंपा आनके जीव छोड़ावे तिसमें गुण क्यों नहीं तथा आपत्ति वाले साधु भी अनुकंपा निमित्ते जीव को छोड़े छोड़ावे छोड़ता ने भला जाणे तिसका प्रायश्चित्त नहीं कहा है जो अनुकंपा निमित्ते प्रायश्चित्त होता तो ( अणुकंपणट्ठयाए ) ऐसा पाठ होना चाहिये था सो नहीं है अब फिर विचारो कि पूर्वोक्त त्रणादिक के पासा साधु कैसे रखेंगे और पूर्वोक्त चतुष्पदादि ग्वादि रहने होवे तिस जगे में साधु को रहना मने है साक्षी सूत्र उत्तराध्ययनजी के अध्ययन १६ वे में इनसे यह पाठ साधु के ठिकाने का संभव नहीं होता है यह पाठ तो साधुजी गृहस्थी के घर पर गोचरी को जावे अगाड़ी गृहस्थ त्रसजीव गोमहीषी बलद बछड़ा बछड़ी मनुष्य बांध तो होवे तथा मूक तो हुवे तिसको कहये आपका काम हूं करूं आप मुझ को अन्न पाणी दो इस रीति दानप्राप्ति आजीविकार्थे बांधे मूकेतो चोमासी प्रायश्चित्त संभवे है परन्तु अनुकंपा का पाठ नहीं है पृष्ठ १० वां पंक्ति २६ वीं से ११ वां पृष्ठ की पंक्ति १६ वीं तक की ( मर्यादा )।

इसमें आपने श्रीआचारांगजी सूत्र के दूसरे श्रुतस्कंध के तीसरे अध्ययन के पहिले उद्देश की साक्षी दीनी है परंतु इस सूत्रजी के सूत्रार्थ का आशय आपने जाना ही विदित नहीं होता है जब सर्वोत्कृष्ट मनुष्य शरीर को बचाने में भी धर्म नहीं ऐसी २ अनार्य सदृश शब्दरचना लिखते हो देखिये देवानुप्रिया यहां तो साधु का कल्प नहीं है तिसवास्ते वर्जित किया है कारण कि जो कर साधु नावड़िया को पानी आवता बतलावे तो शायद नावड़िया कहे तूं मुझ को बतलाता है तो तूं पानी क्यों नहीं रोकता है तब साधु को कहना पड़े कि मोकूं पानी रोकना नहीं कल्पे तब नावड़ियादि सकल साधु को पानी में पटके तिसवास्ते नहीं बतलावे तथा बतलावे तो अपकाय की हिंसा लागे पाणी उचीले तिसवास्ते नहीं बतलावे कारण कि साधु को तो जीव रक्षा कारणे मौन रखणी कही है साखी श्रीसूत्र आचारांगजी के अध्ययन तीजे उद्देश तीजे और ज्यो बोले तो वचन जोग में सावद्य लागे तिसवास्ते मौन कहा है फिर यहां पर ऐसी संभावना करते है कि कोई मौकेसर नावाधिपति अपनी खाली नावा लेकर एक तीर से दूसरे तीर ले जा रहा हो उस समय मुनि उक्त नावा में बैठे अरु नावड़िया का ध्यान तो नावा खेवने में है और नावा में पानी भरता साधु देखे तो तिस मुनि न बतलावे ऐसा संभव है परंतु बना लोक थोड़ा संभव है क्योंकि घणा लोक नाव में इतना पानी को कैसे नहीं देख सके क्या वह सब आन्धा होते हुवे थे या अचक्षु थे जो नाव डूब जावे इतना पानी नाव में भरा हुवे न देखे वास्ते हमारा

उद्र्ध्व लिखित लेख संभवित होता है मान लिया जावे कि घना लोग होवे तो भी साधु को नावा में बैठने की विधि बतलाई है त्रिलोकनाथ तस्यानुसारे वर्ते विण साधु ऐसे नहीं जाने कि जो मैं पानी आवतो बतलाऊंगा तो ए लोक बच जावेगा तिस वास्ते मैं नहीं बतलाऊं ऐसा श्रीआचारांगजी का सूत्रार्थ का आशय अर्थ नहीं है किंतु कल्पनीय है तिस वास्ते नहीं बोलना फिर आपने लिखा है कि साधुजी कार्य करता है वह धर्म का कार्य है उसमें पाप का अभाव है और साधु के लिये जिस कार्य का निषेध है वह पाप का कार्य है यह भी आपका लिखना एकांत अपेक्षा से यथार्थ नहीं है क्योंकि घना कार्य ऐसा है कि साधु नहीं करे और गृहस्थी करे तो गृहस्थी को लाभ होवे जैसे कि अपना शिष्य वा संभोगिक छोटा साधुको अथवा आर्य्याजी को साधु उन्हें वंदना नहीं करे और गृहस्थ करे तो गृहस्थ को लाभ होता है तथा श्रीवर्द्धमान स्वामी के शिष्यों के पार्श्वनाथजी के संतानीय आहार पानी वस्त्रादिक नहीं लेने देते हैं परन्तु गृहस्थी अशनादिक देवे तिनों का पाप कैसा होना संभवे तथा साधु जो कार्य करे सो ही कार्य गृहस्थ करे तिसमें गृहस्थों को पाप होवे ऐसा भी घना कार्य है जैसे की नदी उतरना इत्यादि में लघु नीति वृहत नीति का परठना इत्यादि यहां पर भी चउ-भंगी उत्पन्न होती है जैसे कि एकक कार्य का साधु आदेश भी देवे और उपदेश भी देवे २ एकक कार्य का आदेश देवे परंतु उपदेश नहीं देवे ३ एकक कार्य का उपदेश देवे परंतु आदेश नहीं देवे ४ एकक कार्य का आदेश भी नहीं देवे

और उपदेश भी नहीं देवे ४ इसमें कार्य की विधान संक्षेप से तो हम लिख दीनी है विशेष गुरुगम से जाननाजी ॥ पृष्ठ ११ वां की पंक्ति १७ मी से २६ वीं तककी समीक्षा ।

इस में आपने श्री उत्तराध्ययनजी सूत्र के नवमे अध्ययन की साक्षी दीवी जिसमें यह आपकी वाचालता प्रकट प्रतिभाषे है कि ( वेरी दृष्टि में अमृत है सो एक बेर तेरे देखने से नगरी और अन्तपुर बच सके हैं ) उक्त सूत्रार्थ में यह अक्षर मूल में नहीं है और आपने अनजानों को भर्म में डालने के लिये लिखा है वास्ते प्रयोजन से अधिक बोलना या लिखना येही वाचालपना जानना फिर यहां पर इन्द्र ने कहा है कि तुम्हारा नगर जलते हैं तुम सन्मुख क्यों नहीं देखते हो इस कथन का मूलाशय ही आपके जानने में विदित नहीं होता है जो होता तो सूत्रातिरिक्त लेख क्यों लिखते उक्त इन्द्र का कथन तो सार संभार करने का संभवे है यदि साह में देखना ही मानें तो श्रीसूत्रों में ठाम २ साधु को मोक्ष की तर्फ अनिमेष दृष्टि रखनी कही है तो वहां क्या द्वितीया के चंद्रदर्शनवत् मोक्ष की तर्फ नेत्र फाड़के देखना संभवे है नहीं मोक्ष के लिये यत्न करना सो ही देखना संभवे है लोकोक्ति से भी कहते हैं कि अमुक मनुष्य की अमुक कार्य की तर्फ निजर नहीं है यहां पर भी उक्त रीति से जानना परंतु भोला राजा ने स्वमंतो को आंख दिखलाने की नांई श्रीनमीराज ऋषि को इन्द्र ने जानका मानि सिर्फ देखने का नहीं कहा संभवे है किन्तु यत्न पालन करने का संभवे है अब यहां पर हम श्री उत्तराध्ययनजी सूत्र के नवम अध्ययन में जैसा उक्त विषय में फरमाया है तैसा लिखते हैं ।

मूलपाठ ॥ ( एसअग्गीय वाऊय एयंडज्झइमंदिरं भयवं अंतेउरं तेण कीसणं नावपेक्खह १२ एय मट्ठं निसामित्ता हेउ कारण चो इउ तउ नमी रायरि सिं देविंदं इण मब्बवी १३ सुह वसाम जीवामो जेसिंमो नत्थी किंचण मिहिलाएड ज्झमाणीए नमे डज्झइ किंचणं १४ चतपुत्त कलत्तस्स निवा वारस्स भिक्खूणो पियन विज्झये किंचि अप्पियं पिन विज्झये १५ बहु खु मुणिणोभद्दं अणगारस्स भिक्खुणो सव्व उविप्प मुक्कस्स एगन्त मणुपस्सेउ १६ ) इसका टबार्थ ( ए० ) भन्यत अग्निवली वा० वायरो ( ए० ) ए प्रत्यक्ष ( ड० ) बलेछता हरो घर ( भ० ) हे भगवन् ( अ० ) अन्तः पुरतारोणं ( इतिवाक्यालंकारेण ) ( की० ) किस्याभणी (ना०) सोहमो नथी जोवना १२ ( ए० ) ए पूर्वोक्तार्थ ( नि० ) सामलीने ( ह० ) ज आपणा आत्मानो हूइते रुडी परे राखवू घारथी नाहरू निकलवूंने पर जीवने दुखनू हेतो अने दुःखनू कारण थयए निहेतु कारण प्रेरयूं थकूं ( त० ) ते वारे पछे नमी राज ऋषि शक्रेन्द्रने इम वल्लु १३ ( सु० ) निर सुख हे जिम हू ( व ) बसुं छु रहुं छु सुखे जीवुं छुं ( ज० ) माहरो नथी ( कि० ) काइ अन्य ३ मात्र वस्त्र ( मि० ) मिथलानगरी ( ड० ) बलते थकी ( न० ) नथी ( म० ) म हरू ( ड० ) बलता ( की० ) अल्प मात्र पिण १४ ( च० ) छाड्या (पु०) पुत्र ( क० [illegible] ) स्त्री जण येणे छांडने ( नि० ) सर्व व्या- पार रहित [illegible] ( भि० ) साधुने ( पि ) प्रियकारी वल्लभ [illegible] ( [illegible] ) नथी ( कि० ) काइ डाविए ( अ० ) अप्रियकारी [illegible] ( न० ) नथी काइ १५ [illegible] घणो ( खु० ) निश्चय

( सु० ) साधुने अय सुख है ( अ० ) घार हितअणगारने ( भि० ) साधुने ( स० ) सर्वबाह्य धनादिक अभ्यंतर कषाया दिक सर्व परिग्रहथी ( वि० ) विशेषे मूकाणा छे जे ते साधुने सुख हे ( ए० ) हुं एकेला छुं एहड एकलपणो ( म० ) देखतो थको विचरे ते साधन सुख है १६ अब देखिये इसमें ऐसा नहीं कहा है कि तेरी दृष्टि में अमृत वर्षे है एकवेर सामने देखो तो बलती रह जाय यहां तो इन्द्रने परीक्षा के निमित्त कहा है कि हे स्वामी तुम्हारा अन्तःपुर जनाना जलता है तुम सन्मुख क्यों नहीं देखते हो ऐसे मोहनी उपजाई है परंतु यहां अनुकंपा का नाम ही कहा है और नमी राजऋषि भी यहां कहा है कि मैंने तो छोड़ा है मैं सुखे बसता हूं और मेरे बलने का कछु नाहीं है यदि अनुकंपा का प्रश्न होता तो नमी राज ऋषि ऐसे कहते अहो ब्राह्मण मुझको यह अनुकंपा करनी न कल्पे परंतु ऐसा नहीं कहा है जेकर यह प्रश्न अनुकंपा मे ठहराओगे तो पुनः महल कराने का कोट दरवाजा कराने का धन भंडार भरावने का प्रश्न चोर का वैरी का इत्यादिक प्रश्नों में कौनसी अनुकंपा सुनावोगे यह तो सर्व प्रश्न परीक्षा के वास्ते हैं कि नमी राजऋषिका कन्दर्प मोहनी चरित्र मोहनी विषय कषायादिक उपशम्याकि नहीं उपशम्या हैं नहीं जब इन्द्र तो सम्यग् दृष्टि हैं ऐसे ऐने कैसे कहे कि तुम साधपणो छोड़ के पिछे लेना गढकोट महल करवा के चोरों को वश करके मनुष्यों को काबू में ले के पनर्वास करके कोठार भंडार बधाके तब जइयो। हे नमीराज फिर तुम इस भेष को त्याग कर तापस पना आदरो एसा वचन साधुको सम्यग् दृष्टि कदापि

कथा ऐसा संभव नहीं है विदुन परीक्षा के. पृष्ठ ११ वें की पंक्ति २७वीं से १२वां की १५वीं पंक्ति तक की ( समीक्षा )

इसमें आपने लिखा है कि जो प्रश्न करने वाले साधु श्रावक त्रस जीव का जीवना वांछते हैं अनुमोदते हैं उन दोनों के विषय में श्री भगवान ने चौमासिक प्रायश्चित्त आने कहा है यह आपका लिखना तदन श्री सूत्रजीसे विरुद्ध है और कपोल कल्पित है क्योंकि श्री सिद्धांत शास्त्रों में कहां ही भी त्रस जीवका जीवना वांछने से श्रावक को तो चौमासिक प्रायश्चित्त आना संभव ही कैसे लेकिन साधु को चातुर्मासिक प्रायश्चित्त लिखा विदित नहीं होता है किंतु ऐसे तो श्री सूत्रका वाक्य है कि ( सव्वे जीवावि इच्छंति जीवीउंणमरीजीउं ) इतिवचनात् इसमें कहा है कि सर्व जीव जीवतव्य वाला साराही जीना वांछते हैं अब कहिये सर्व जीवमें से कौन से साधु श्रावक बाकी रहे सो आप स्वयं समझ सकते हो फिर आपके ही संत संति यांजी भी असंयति जीव मक्खी ज्यूं कादिकों को बचाते हैं और शीतकाल में मक्खी आदि जीव धोवनादि में पड़ जावे तिनका बड़ा यत्न करते हैं और ज्यूंकादिक वस्त्र से गिरेपड़ते हैं तब उनको उठाके पीछी वस्त्रादिकमें धरके पोखते हैं अब आपके कथनानुसार उनों को भी नित्य चौमासिक प्रायश्चित्त आना होगा तबतो उनका साधुपनका अभाव होजावेगा तब आपके गुरु गुरणीजी कौन रहेंगे सो विचारना पृष्ठ १२ वां की पंक्ति १६ वीं से पृष्ठ १३ वां की पंक्ति ११ वीं तक की ( समीक्षा ) यह आपका कुल लेख असम्बद्ध और एकांत हठ दुराग्रह ग्रसित है इसवास्ते समीक्षा करने योग्य

नहीं है तथापि जिज्ञासुओं के लाभार्थ यत् किंचित् लिखते हैं श्री आचारांगजी में कहा है कि आज्ञा के बाहिर उद्यम और आज्ञामें आलस्य यह दो बोल मत हो ए शिष्य से गुरुका कथन है इस वार्ता को हमतो यथार्थ ही मानते हैं परंतु आपही आज्ञा अनाज्ञा के स्वरूप के अनभिज्ञ विदित होते हो ( २ ) सूत्रजी आचारांगजी में कहा है कि श्रीवीतराग की आज्ञा के बाहिर धर्म प्रवृत करे वह तप संयम से भृष्ट है हम तो इस लेख को अत्यन्त आग्रह पूर्वक ( तहमेवसच्चं ) करके मानते हैं परंतु आप लोगोंका हमें वहुत आश्चर्य आता है कि आपका हाथीके दंतवत् कथन विलक्षण है क्योंकि आप कहां ही तो मिथ्यात्वी की करणी को जिनाज्ञा में लिखते मानते हो और कहां ही ऊपर लिखे मुजब मानते हो वास्ते आपका वाक्य की एकसी धारानहीं है और भगवंतजी की आज्ञा बाहिर मिथ्यात्वीकी करणीमें धर्म मवृतकरे वह तप संयम से भृष्ट है ( ३ ) सूत्रजी श्री उवाइजी के २० वें प्रश्न में कहा है कि श्रावक को केवली प्ररूपे धर्म विना अन्य धर्म नहीं मानना चाहिये इस लेखको हमतो विशेषता करके मान करते हैं एक श्रावककोक्या वल्कि सकल जीवोंको केवली प्ररूपे धर्म विना अन्य धर्म नहीं मानना चाहिये यहांपर केवली प्ररूपे धर्मको पहचानना अवश्य चाहिये केवल आज्ञा २ धर्म २ पुकारने से क्या होना है ४ सूत्रजी श्री आचारांगजी में कहा है कि साधुकी आज्ञा के बाहिर धर्म श्रद्धे उनको कामभोग में खुनो कहना चाहिये और हिंसा करने वाला कहना चाहिये यह पूर्वोक्त सब आपका वाक्य आप पर घट सके हैं क्योंकि आप

मिथ्यात्वी की आज्ञा बाहिर मानते हो और उसकी करनी मानते हो (५) सूत्रजी श्री उत्तराध्ययनजी के २८ वें अध्ययन की ३१ वीं गाथा में कहा है कि समगति को चाहिये कि केवली पुरुषे धर्म विना अन्य धर्म नहीं माने इसपर हमारा इतना ही लिखना बहुत है कि आप पुनः एक ही बात को लिख के क्या सिद्धि किये चाहते हो उक्त श्री सूत्रों के वाक्य तो हमको सर्वथा प्रकारे मान्य हैं इसवास्ते निः प्रयोजन पुनरुक्ति लेख लिखना विद्वानों का काम नहीं है तथा आपकी ही श्रद्धान उक्त गाथा से उलटी है क्योंकि उक्त गाथा में सम्यक्त का अष्ट आचार कहा है जिनमें से वात्सल्य प्रभावना को तो आपने मूल से ही उठादिया है क्योंकि श्रावक को जहर का बटका कुपात्र के सदृश तथा छकाय के मार छकाय के शास्त्र समान कहने से वात्सल्य और प्रभावना का करना ही कहां रहा इससे (६) सूत्रजी श्री सूयगडांगजी के पहिले अध्ययन के दूसरे उद्देश की १४ वीं गाथा में कहा है कि केवली की प्ररुपणा बिना अपने आप प्ररुपणा करे जिसके किंचित्मात्र भी जानपना नहीं यह भी आपका लेख आपही के गुरुजी पर घट सक्ता है क्योंकि आपका अर्थात् तेरह पंथियों का आदि पुरुष ने श्रीकेवलीजी की प्ररुपणा बिना विरुद्ध प्ररुपणा करी है जैसे कि (१) श्रीभगवंत शासन स्वामी वर्द्धमान स्वामी को चूका कहना (२) प्रतिमा प्रती पन यानि ११वीं प्रतिमाधारी श्रावक को ४२ दूषण टाल के असनादिक देवे जिनमें एकांत पाप कहना (३) अनुकम्पा दान देवे जिसमें एकान्त पाप बतलाके निषेध करने का कहना

(४) दया अनुकंपा आन कोई किसी को मरन का भय से रक्षा करे ( यानि मरता जीव को उबारे ) तिसको १८ पाप लगे ऐसे बतलाना (५) ऐसे जन को असंजति कहना ( ६ ) स्थिवर कल्पी साधु को किवाड़ नहीं देने खोलने का कहना (७) साध्वी को शील रक्षा के लिये किवाड़ खोलने की आज्ञा कहना ( ८ ) अन्य साधु स्थिवर कल्पी किवाड़ जड़े खोले तिसको साधु पने से भ्रष्ट भेषधारी कहना ( ९ ) विना कारण साध्वी से असनादी का संभोग करने का कहना (१०) क्षेत्र न्यारा बतलाकर नित्य पिंड लेना (११) साधु के लिये गृहस्थी के घर पर बैठके धर्मकथा कहने का कहना (१२) साधु सिवाय सबको असंजति का कहना ( १३ ) असंजति को पोखने मात्र से १५ कर्मादान लगने का कहना ( १४ ) अनुकंपा को सावद्य निरवद्य का कहना ( १५ ) आश्रव को एकांत जीव कहना ( १६ ) पुण्य को एकांत छाडवा जोग का कहना ( १७ ) पुण्य पाप को आज्ञा में नहीं नहि आज्ञा बाहिर ऐसे कहकर फिर पुण्य को आज्ञा में कहना ( १८ ) और आज्ञा बाहिर एकांत पाप कहना ( १९ ) मिथ्यात्वी की करनी में धर्म मानना जिन आज्ञा कहना ( २० ) नव पदार्थ का जान पना विना सम्यक्त दृष्टि पना नहीं मानना ( २१ ) साधु जान के एक भी दोष लगा लेवे तिसको साधु पद से भ्रष्ट असाधु कहना ( २२ ) साधु की साध्वी की हाजरी लेने का कहना ( २३ ) लेख कराना ( २४ ) वर्षी गांठ का करना ( २५ ) इत्यादिक कहां तक लिखें लघु लिखे बहु जान लेना जब श्री सुत्रीकृतांगजी के फरमाने मुजब तथा आपके लेख मुजब उक्त

प्ररुपणा करने वाला में किंचित् मात्र भी ज्ञान पना नहीं जानना चाहिये ( ७ ) फिर श्रीभगवान ने कहा है कि ( अणाये मार धम्म एस उत्तर वाद ) मेरी आज्ञा में मेरा धर्म यह उत्कृष्ट चर्चा यहां पर आपने भद्रिकों को भ्रमाने के लिये यह लेख आपने वक्रता युक्त लिखा मालुम होता है ( इसका समाधान यहां पर भव्य भव भीरुओं को प्रथम तो श्रीजिनाज्ञा को पहचानना सो ऐसे हैं कि आज्ञाके २ भेद हैं। उपदेश आज्ञा और आदेशआज्ञा। उपदेशआज्ञा निःकेवलकार्यकी होतीहै। और आदेश आज्ञा कारणकी होती है फिर आज्ञा का २ प्रकार उत्सर्ग आज्ञा और अपवाद आज्ञा। उत्सर्ग आज्ञा मोक्षमार्गकी और अपवाद आज्ञा कारण विशेष की, उदाहरण जैसे कि आहार का प्रत्याख्यान करने से भव रुकता है यह उत्सर्ग में उपदेश आज्ञाहै और अतिशय ज्ञानीकी सीखहै तुमारा अवसर आगया है तुम आहार का त्याग करदो यह उत्सर्ग में आदेश आज्ञा है और पांच समती बया इत्यादिक की अपवाद में आदेश आज्ञा है और नदी उतरना जलपीने लघु बडी नीति का परठना रात्रि को परठनादि कार्यों की अपवाद में उपदेश आज्ञा है तथा श्रावकों के लिये मूल सम्बर निर्जरा के कार्य में उत्सर्ग अपवाद में आदेश उपदेश आज्ञा जानीये है तथा श्रावकों का अन्य भी मिश्र स्थानों में उपदेश आज्ञा समझे है जैसे कि भिक्षा अवसर श्रावक के घर पर मुनि पधारे तो सात आठ पावटा साहमासाके वंदणा भाव करना भाव सहित निर्जरा अर्थे १४ प्रकार का शुद्ध प्रासुक एषणीक दान देना पीछाफिरते इनको सात आठ पावंडा

पीवाना अथवा श्री धर्मगुरु पधारते हुए जानके लेनेको सामा जाना, रहते हुएको यथायोग्य सेवाभक्ति करना, पधारते हुएको पहुंचावना इत्यादि इन उदाहरणों से सर्वत्र तिक्ष्ण बुद्धि से पूर्वोक्त जिन आज्ञाका स्वरूप को सम्यक प्रकारे जानना. अब दयाधर्म जिसका भी २ भेद (दुविहे धम्मेपणत्ते) इति वचनात् श्रुत धर्म और चारित्र धर्म २ श्रुतधर्म में सम्यग्ज्ञान १ सम्यगदर्शन २ समागया और चरण धर्म से सम्यक्चारित्र और सम्यक् तप २ यह दो समागया जानना॥ अथवा (धम्मेदुविहे पणत्ते तंजहा आगार धम्मे अणगार धम्मे) इति वचनात् श्रावक का धर्म १ साधुका धर्म २ अथवा संवर धर्म १ निर्जरा धर्म २ यहांपर सम्यक् प्रकारे समझना कि श्रीभगवंतजी की आज्ञामें एकांत धर्म है एकांत मुक्तिका हेतु है जिसमें दूसरा कोई पंथ नहीं है परन्तु इतना और भी ख्याल करना कि भगवंतजी की आज्ञामें शुभजोग व्यापार से पुण्य भी नीपजे है और श्रीभगवंतजी की आज्ञाबाहिर भी शुभ जोगोंसे पुण्य बंध होता है यानि पुण्य उपजे है एकांत भगवानकी आज्ञाके बाहिर पापकहना सो अनुचित है जेकर कहोगे कि जेहुं पीहि आवला स्वतः होता है तैसे आज्ञाबाहिरा धर्म लारेहिज पुण्य बंधन. है यहां एकांत कहने वालों के हिसाब से तीनों कालमें कांईभी जीव मुक्ति जावहोनहीं सकेगा क्योंकि जेहुं पीहि पूर्व पर आवला निश्चय जिस्के तैसेही धर्मलारे निश्चय पुण्य बंधे और पुण्य भोगवंते राग द्वेष से पापबंधे इन पाप तोड़ने को फिर धर्म करना पडे जिससे पुनः पुण्यबंधे इस न्याय अन्यावस्था [illegible] जाता है वास्ते सर्वो [illegible] सर्वसो [illegible]

तथा आगला कर्मको तोड़े तिसको कहते हैं और पुण्य बंधतो आश्रव मार्गमें है वास्ते अकाम निर्जरा तथा अज्ञान कष्ट जिनाज्ञा बाहिर हैं और श्री जिनाज्ञा बाहिर भी पुण्य निपजते हैं साक्षी अनेक सूत्रों की यदि आज्ञा माहिली करनी बिना पुण्यबंध नहीं ज माना जायतो कहिये निगोदिय एकेन्द्री जीव कोनसी आज्ञा माहिली करनी करते हैं सो बतलाना तथा जब अनंत पुण्यबंध तब एकेन्द्रीका बेइन्द्री होवे ऐसे क्रम से पंचेन्द्री पर्यंत अनंतानंत पुण्य की वृद्धि समझनी तो मांगों कि वह एकेन्द्रियादिक जीव कोनसी आज्ञा माहिली करनी करके पुण्य वृद्धि करके ऊंचे आते हैं और उत्तम एकेन्द्रियादिकों की करणीको किसी भी सूत्रमें जिनाज्ञामें कही होवे तो बतलाना हम आपका धन्यवाद देंगे. सुनो देवानुप्रिय किसी भी जिनागममें एकेन्द्रियादि मिथ्यात्वी की करणी जिनाज्ञामें नहीं कही है वह तो अकाम निर्जरा से पुण्य वृद्धि करके काल स्वभाव आदि लब्धियोंसे ऊंचे आते हैं इससे स्पष्ट है कि अकाम निर्जरा अज्ञान कष्ट आज्ञा बाहिर है और आज्ञा बाहिर भी पुण्य बंध होता है यहां पर इतना विशेष जानना कि यह है वहां [illegible] गुणस्थानक बिना पुण्य की निर्जरा है और [illegible] है वहां तक की भजना जानना तथा सदर्भ अन्तर्गत [illegible] नहीं समझना कारण कि [illegible] लादिक अनेक हैं.

[illegible] ॥

## ॥ अथाग्रे षष्ठ प्रश्नोत्तरस्य समीक्षा लिख्यते ॥

पृष्ठ १३ वां की पंक्ति १४ वीं से १७ वीं तक की समीक्षा.

इसमें आपने लिखा है कि सूत्र में पाठ ( असइजण ) है और इसका अर्थ असतिजन है और असतिजन का भावार्थ असंजति है और असंजति को पोषने में श्रीभगवान ने एकांत पाप बताया है अब देखिये यहांपर आपको सत्तरहवां पाप लगने का संभव होता है क्योंकि प्रथम तो श्रीसूत्रजी विरुद्ध प्ररूपणा करी फिर उसको गोपने के लिये असंजति जन का भावार्थ असंजति है ऐसे दंभ युक्त अनृत से. वाह जी देवानुप्रिया वाह! तनिक सोचो कि श्रीसूत्रजी में श्रीमर्हन्त ने क्या फरमाया है अब हम श्री सूत्रजीमें जैसा कर्मादान का बयान है तैसा लिखते हैं प्रथम कर्मादान शब्द का परमार्थ ऐसा है कि १५ प्रकारे व्यापार की वृत्ति आजीविका करके जीवै नहीं तथा इंगाल कम्मे इति इंगाल कहिये कोयला करके बेचै तिनका लाभसे अपनी आजीविका का करना यह काम श्रावक न करे लेकिन सहजे घरके काम अर्थ चाहिये सो लावे तिनको इंगालकम्मे न कहिये ऐसे ही यावत् १४ बोल करके पोता की आजीविका न करे तैसेही १५ वां ( असइजण पोसणिया ) दासी पोषण भाड़ा वास्ते तथा गणिका को पाल के स्वार्थ भोग है ते इत्यादिक तथा हिंसा की वृद्धि निमित्त जीव पाले जैसे कि कुक्कट मार्जार सूकर कूकर इत्यादिक १५ कर्मादानरूप ये पंदरे का कर्मादान कहिये

परन्तु अनुकंपा करके असंजति को दान देना सो १५ वां कर्मादान ऐसा अर्थ नहीं है यदि दान देने से असंजति का भरण पोषण करने से १५ वां कर्मादान लगता होवे तो श्रावकों के सप्तम व्रतमूल से हीज रहे नहीं क्योंकि श्रीमन् अर्हंतों का सर्व श्रावकों ने १५ मां कर्मादान सप्तमाव्रत का अतिचार आनंद स्वयं करना अन्य के पास कराना और करते प्रति अनुमोदन करना त्याग है साक्षी सूत्र भगवती जी के शतक आठवें उद्देशक पंचमे ( सो सूत्रपाठ ) ( किं सेगपुए जे इमे समणो वासगा भवंति तेसिंजो कप्पइ इमांइ पणरस कम्मादाणाइ सयं करेतए वाकारित एवा करतं वा अंनं नसमणु जाणे ने वातंजहा इ गाल कम्म जाव असइ जण पोषणया ) भावार्थ यहां ऐसा कहा है कि जो श्रमण भगवतजी श्री महावीरदेवजीका सर्व श्रावकों ने १५ कर्मादान स्वयंकरना वा कराना और अनुमोदन करना सो सराया है श्री सूत्र जी में तो ऐसा कहा है इससे स्पष्ट है कि अनुकंपा निमित्त असंजति को पोषना सो पन्द्रहवां कर्मादान नहीं है और आप कहते हो कि असंजतिका भरण पोषण करे तो १५ वां कर्मादान लगे तो कहिये श्री आनंद जी प्रमुख १५६०० श्री भगवंत जी के सर्व श्रावक आए मोसम फरते थे न्यातों गोतों जीमाते थे सो वह जीमने वाला सर्व संजति थे कि असंजति तथा गाय भैंस गवालण मनुष्य तिर्यंच को पोषते थे वह संजति के असंजति तथा दास दासी प्रमुख घर के टावर छोरू प्रमुख का पोषन थे वह सब संजति थे कि असंजति तथा

गृहस्थाश्रम में बैठे थे सो मंगता भिखारी को भी दान देते होंगे क्योंकि श्री सिद्धान्त में ठाम २ ( अवंगुअ दुवारा ) ऐसा पाठ है इससे सिद्ध है कि सर्व श्रावकों का आचार अनुकंपा दान देने का है अब कहो यह लेनेवाला संजति था कि असंजति इत्यादि असंजति का भरण पोषण करने वालों में आपके कथनानुसार श्रावकपन कैसे रहा होगा सो सोचन..

और कर्मादान नाम अनार्य व्यापार महा आरंभ उक्त सहेत पाप घणा है जिन के विषे तिस लिये कहते हैं अरु अनेरा व्यापार जिस में पाप थोड़ा है तिस को आर्य व्यापार कहा है साक्षीजी श्री सूत्रजी प्रश्नव्याकरणजी के पहिले पद का. अब विचारिये अनुकंपा करके दान देवे यह करनी आर्यों की है कि अनार्यों की है तथा दान देने में पन्द्रहवां कर्मादान कहते हो सो तुम स्वतः सोचो कि उक्त अनुकंपा दान में इतना बड़ा क्या भारी पाप है जो जरूर पन्द्रहवां कर्मादान में गिना. अकल से खुदा को पहचानो कि चार कारण से जीव नारकी, तिर्यंच का आयुष बांधते हैं तिस में भी उक्त दान को न गिना और १८ पाप में भी अनुकंपा दान को न गिना, अधर्म पक्ष में भी न गिना तथा नारकी का नेरियों को परमा धार्मिक पहिले भव के दुःकृतयायाद करा करा के वेदना देते हैं जैसे कि परदारागमन, जीवहिंसा, अलिक चोरी छल, कपट, आल निंदा, चुगली प्रमुख तिस में भी दान को न गिना तो आप जान सके हो कि अनुकंपादान पन्द्रहवें कर्मा-

दान में नहीं संभवे है कि फिर उक्त दान में जो एकांत पाप होवे तो श्री तीर्थंकरजी श्री केवलीजी साधुजी किसी को भी त्याग क्यों न कराया ? पाप का तो प्रत्याख्यान ठाम २ सूत्रों में कराया है और श्री सूत्रों में ठाम २ कराने का कहा है वास्ते अनुकंपादान तथा उचित दान को पन्द्रहवां कर्मादान में कहते हैं सो श्री सूत्रजी से विरुद्ध कहना है ॥

॥ इत्यलम् पष्ठम् प्रश्नोत्तरस्य समीक्षा ॥

## ॥अथाग्रे सप्तम प्रश्नोत्तरस्य समीक्षा लिख्यते॥

पृष्ट १४ वां की पंक्ति १ से २५ वीं तक की समीक्षा

( क ) श्रीठाणांगजी के दशमें ठाणे में दश वांछा वर्जी है जिसमें असंजति का जीना मरना वांछना वर्जा है ( असंजम जीवितव्य आसंशी ) यह आपका लिखना सूत्र विरुद्ध है उक्त सूत्रजी में तो ऐसा सूत्र पाठ है ( दसविहे आसंसप्पओगे पन्नंत्ते तंजहा इहलोगासंसप्पओगे परलोगासंसप्पओगे दुहओ लोगासंसप्पओगे जीवियासंसप्पओगे मरणासंसप्पओगे कामासंसप्पओगे भोगासंसप्पओगे लाभासंसप्पओगे पूयासंसप्पओगे सक्कारासंसप्पओगे )।

सुगमार्थः—यहां तो पूर्व सूत्र में आगामिकाल में कल्याण कारक कर्म करनी करने आसं सानाम इच्छावां न हानि से का प्रयोग यानी व्यापार सो न करना ऐसा कहा है इसमें असंजति का जीवितव्य का जिकर ही कहां है यहां आप कहोगे कि ( जिवियासंसप्पओगे मरणासंसप्पओगे ) ऐसे सूत्रपाठ में जीना मरना वांछना वर्जा है जिससे कहते हैं इसका समाधान, सुनोभाई कमला रोग ग्रसित पुरुष को सर्वत्र पीत ही पीत दीखता है तैसे ही आपको मिथ्यात्वभास से जीवितव्य मरन का भी सूत्र में हर्फ देखते ही कहते हो कि देखिये इसमें जीना मरना वर्जा है परन्तु परमार्थ को नहीं जानते हो अब उक्त श्रीठाणांगजी में तो ऐसा कहा कि (जीविया संसप्पओगे) सो इन करनी से चिरंजीवी हो जाऊं ४ ( मरणासंसप्पओगे ) ( शीघ्र मरणा हो जो दुःख न ५ ) ऐसे दगड उन्सगं मागं मे अनना

जीना मरना की वांछा करनी वर्जी है. असंजति का जीवितव्य के वास्ते नहीं वर्जा है आपने सूत्रजी से विरुद्ध स्वकपोल कल्पित कुबुद्धि कौमुदी से अनघड़ टोल सा वाक्य धरदिया जानो।

( ख ) फिर सूत्र सुयगडांग के १० में अध्ययन की २४ वीं गाथा में असंजति के जीवन मरण का वांछना वर्जा है यह भी आपका लिखना पूर्ववत स्वकपोलकल्पित श्री सूत्र जी से विरुद्ध है क्योंकि श्री सूत्रजी में तो इस मुजब लेख है सो ( सूत्रपाठ ) ( निल्लमगेहाउ निरावकंखीकायं विउसभ नियाण छिन्नेणो जिवियं णो मरणावकंखी चरेज्ज भिक्खुव लाया विमुक्के तिबेमि २४ ) ( इसका संक्षेपार्थः ) ऐसे हैं कि निकला घरथकी समारंभ माहिथकी छांडीने जीवितव्य मरण भी अपेक्षा न करे काया वो सरावे परि सह उपजेति वारे शरीरनी ममता मुकीनी हाणु न करे साधु जीव वुंन वांछे मरण पिण न वांछे वेगो आवे तो भजो तथा न वांछे अकाम मरण विचरे संजमने विवेदश विश्यति धर्मपाले कर्मबंधथकी तथा संसार चक्रवाल थकी मुकाणा भव थकी इति ब्रवीमि २४ इसमें पोता की आशा तृष्णा रूप जीवितव्य तथा बालमरण नहीं वांछे ऐसे कहा है ऐसे सूत्रों में मकट कहे संते आप यातो आकुट के या अनजानपने असंजति का जीवा नहीं वंछना इतने अन्तर कहांसे लाये, देवानुप्रिया जरा विवेक रूपी यंत्र खोलके लिखना चाहिये था।

( ग ) फिर सूत्र सुयगडांग के १३ वें अध्ययन की २३ वीं गाथा की साक्षी दिवी सो भी आपकी समझ फरक से

अन्यथा है क्योंकि उक्त सूत्रार्थ में तो यह भाव है सो ( सूत्रपाठ ) ( आहावहायं समुपेह मायसन्वेहिं पाणेहिं णिहायं दंडंनो जिविर्य खोमरणा हिं कंखी परिवदे जावलिया विमुक्के तिवेमी २३ ) इसका भावार्थ यथातथ्य साची सूत्र उक्त शुद्ध मार्ग छे इणेपर आलोचतो आपणे अनुष्टान संभारतो साधु सर्व तथजारी जीव प्राणधार ने सर्वा प्राण धरे छे एकेन्द्रियने पंचेन्द्रियते मुहावद्द जीवहिंसा छाडीने विचारे छे नवांछे असंयम जीववो अने न करे वली मरनो पिण छे ते मरणनी चिंता पिण परिवर्ते संयम विनयने विषे शुद्ध संयम पालेवली मोह गहन संसार चक्रवाल सर्व छाड़े इति वृत्तामि २३ ) इस में भी प्रकट पने अपना असंजम जीवितव्य न वांछे ऐसे लिखे संते आप सूत्र पाठ को मोड़ते हो सो आपकी बड़ी भूल की बात है ऐसे ही अनाड़ी आपने ( च ) ( रू ) ( च ) ( छ ) इन चिन्हे की जो साक्षी दिवी है सो सब आपका मतिभ्रमसे आपको ऐसे दी- खता है किंतु श्री सूत्रजी में तो कहीं भी असंजति का जीना नहीं वांछना ऐसे नहीं लिखा है श्रीसूत्रजीका तो यह आशय है कि संयति मुनि संयम जीवितव्य जीते जीते कष्टादिक उत्पन्न होते सम परिणाम कर सहे परंतु अपना असंयम जीवितव्य यानि असंयम करके जीवना न वांछे उक्त सूत्रोंमें सर्वत्र ऐसा भावार्थ जानना और आप अपनी तरफ की नजीरों में ठांम २ ( असंजम जीवतव्य आसरी ) ऐसा लि- खा है सो कोनसा सूत्रानुसार लिखा है यहांपर यदि आपने भूलके सर्वत्र सूत्रातिरिक्त लिखदिया होवे तो अपने गुरुजीसे समझ लेना यदि आपके गुरुजी के कहने से सर्वत्र पूर्वोक्त

सात बोलों के होने न होनेकी वांछा का वर्जन है। इसमें भी पूर्वोक्त भाषा दोष टालने के लिये रागद्वेष से पूर्वोक्त ७ बोल कब होगा वा मत हो ऐसे साधु को न कहना ऐसे कहा है सो मिश्रस्थान ज्ञेय पदार्थ में मुनि को मध्यस्थ रहना सावद्य-दान पृच्छनाधिकारवत् सो ठीक ही है परंतु आपने असंजति को जीना विषय में यह दाखला कैसे दिया फिर आप ठाम २ पर असंबंध दाखला देते हो सो अत्यन्त अयुक्त समझो।

(च) सूत्र सूयगडांग के छठे अध्ययन की गाथा में आर्द्र कुमार ने कहा है कि भगवान् उपदेश देवे वह अनेरा को तिराने और अपने खुद के कर्मों को क्षय करने को देवे परन्तु (असंजति के जीने के लिये उपदेश नहीं देवे) इसमें भी आपका मति दोष से आपको विपरीत प्रतिभासन होता है बाकी उक्त सूत्रजी में तो आत्म प्रशंसादिक वास्ते भगवंतजी धर्मदेशना नहीं दे किंतु अपना कार्य वास्ते यानी तीर्थंकर नाम कर्म खपावा काजे अपना जीवों के हित क्षेम रक्षा वास्ते भव्य आर्यों के उपकार वास्ते धर्मनागरे प्रभु यहां तो आजीविका निमित्त स्वात्म श्लाघा वास्ते और किसीके भय के मारे खुशा-मदी के मारे भगवान् धर्मदेशना नहीं देवे हैं पूर्वोक्त लिखे मुजब कहा है परन्तु (असंजातिके जीने के लिये उपदेश नहीं देवें) इन अक्षरों की उक्त सूत्रार्थ में गंध ही कहां है वास्ते वीतराग के वाक्याशय से विरुद्ध स्वकपोलकल्पित नहीं लिखना चाहिये (ट) ठाणांग सूत्रके तीसरे ठाणांके तीसरे उद्देश में कहा है कि कोई जीव किसी जीवको मारता देखो तो धर्म उपदेश देकर समझावे अथवा मौन रक्खे तथा उठकर

एकांत चला जावे यह तीनबोल कहे हैं परन्तु जबरन छुडाना नहीं कहा है यहां भी ( जबरन छुडाना नहीं कहा है ) इतने अक्षर उक्त सूत्रजी में नहीं है आपके घरके हैं उक्त सूत्रजीमें तो इस तरह है सो सूत्रपाठ ( तउ आयरक्खा पत्तेतं संजहा धम्मियाए पड़ीचोयणाए पड़ीचोएत्ता भवति तुसिणिएवा सित.उट्ठितुवा आयाति एगंतं मवक्कमेज्जा ) सुगमार्थः। इसमें कहा कि हरएक किस्म के अकार्य करनेको साधु उपदेश देकर वर्जे और उपदेश से न माने तो साधु अणबोल्यो रहे निरपक्षी थको और वारी न सके अणबोलाही रह न सके तो तिहां थका उठी आपणा पे एकांत भागने विषे जाने ऐसे हैं अब कहिये ( कोई जीव किसी जीवको मारता देखे ) यह अक्षरही कहां है तथा असंजति का जीना वांछने विषय में आपने यह नजीर दी है परंतु असंजति इतना हर्फ हो उक्त सूत्रजीमें कहां है खैर आपने असंजति के जीने विषय उक्त सूत्राशय समझ रक्खा होगा लेकिन उपदेश देकर तो असंजति का जीवाना सिद्ध है जब उपदेश देकर असंजतिको जीवाना ठाणांगजी के फरमाने मुजब आप मानते हो तबतो सीधी बात है कि असंजति को जीवाना सो तो भया कार्य और उपदेश देकर वा हरेक पदार्थ देके अथवा बलत्कारे छुडवाना सो भया कारण अब मुनिको तो निखद्य कल्पनिक कारण जो सत्य शास्त्रों में कहा है तिस कारण द्वारे उक्त कार्य करणा और गृहस्थ सावद्य निरवद्य हरेक किस्म के कारण के जरिये से उक्त असंजति को जिवाना रूप कार्य कर लेवें उसमें उसको क्या होवे जेकर कहोगे पाप तो कहिये कारण में पाप है कि कार्यमें पाप

हैं और वचन से उपदेश दे छुड़ाने में धर्म कहते हैं और उक्त
काया के योग के उपदेश से जीव छुड़ाने में पाप कहते हैं अब
तुम स्वतः समझ सक्ते हो कि इनोंका वचन कहांतिक सच
माना जाय यहां पर आप कहोगे कि काया का योग से उपदेश
देना हमकोइ मान्य हैं परंतु तुम लोग जबरी करते हो जैसे
कि बिल्ली मूसा पर आनी देख के हुत् हुत् करके हटाते हो
यह हटाना काया को योग्य का उपदेश में कैसे माना जाय
इसका समाधान सुनो भाई उपदेश यथा योग्य यानी जैसा को
तैसा दिया जाता है जैसे कि कोई श्वान साधु का आहार पर
खाने को आवे तो क्या उसको साधु वचन से उपदेश देवे कि
देख श्वान साधु का आहार नहीं खाना तोको पाप लगेगा यह
वचन का उपदेश उस श्वान के लिए निरर्थक है उसके लिये तो
सोंटा वा डंडा दिखाके हटकारना यही उपदेश में गिने जाते हैं और
आपके गुरुजी भी ऐसे ही करते हैं और करते होंगे यथा साधु
आत्मरक्षा वास्ते दुष्ट ( मारण ) बलद सांढ़ा हस्ती भैंसादिक
आ जाते हैं सोंटा वा डंडा यानि लकड़ी दिखलाते हैं यह
उसके लिये काया के योग्य से उपदेश का देना गिने जाते हैं
यदि उक्त रीति से हटाना काया के उपदेश में न गिनोंगे तो
वचन से गृहस्थ को खाने आने की आज्ञा देने का दोष आवेगा
दूसरा हटाना रहेगा और उन जीवोंको हटानेका भी नसी-
हती में साधु को वासिरावण कहा है और आपके गुरुजी भी
पूर्वोक्त रीत करते हैं यहां पर आपको कहना ही पड़ेगा कि
साधु को आत्मरक्षा व इनोंका काया का योग्य से उपदेश है
स्वरक्षार्थ है बाकी पाप नहीं तो धर्म ही रहा और छुड़ाने में

और जो सूत्र पाठ लिखा है सो भी अत्यंत अशुद्ध है और उसमें ऐसे कहा है कि संलेपणा संथारा में पांच बोलों की वांछा करनी नहीं जो करे तो संथारा में अतिचार लगे जिसमें भी ऐसे समझना कि संथारा में घना जीउं तो अच्छा अथवा मरण वेगा आजावे तो अच्छा ऐसे अपने सुख दुख आशा तृष्णा रूप जीवन आसरी कहा है. पिण ऐसे कहां कहा है कि किसी जीव को जिरनों न वांछे होवे तो तस्समिच्छामि दुक्कडं. यहां पर आपने भी समतोलबुद्धि श्री सूत्रानुकूल हीज अपना जीना मरना लिखा है यह लेख देख के हमको अत्यन्त संतोष हुवा क्योंकि चलते तवे छाछ काटो पाईज अपन तुल्य गिने जाते हैं हम आप लोगों से नमृता पूर्वक निवेदन करते हैं कि आप आपने लेख को ध्यान पूर्वक अवश्य विचारोगे तथा फिर आप कहोगे कि संथारा में जीवणो मरणो वांछा दोष है तो विना संथारे भी जीवनो वांछे सो आर्तध्यान है तिसका समाधान कहिये. देवानुप्रिया धर्मध्यान शुक्लध्यान तो सम्वर निर्जरा सम्यक्त सहित को कहिजे तिस संवर से तो पुण्य पाप रुप कर्म आवता रुके और निर्जरा से पुराना कर्म टूटे. साक्षी सूत्र जी श्रीमती भगवती जी के शतक दूजा उद्देश पंचमां की और रुद्रध्यान से पाप बंधे अब कहिये पुण्य कौन से ध्यान से बंधे और देवता का आयुष कौन से ध्यान से बंधे, सो विचारो. भजी भाई पुण्य का अरु देवता का आयुष को बंध ही मुख्यता में आर्तध्यान में है आश्रव भाव में है : भाव में मुख्यता से आयु बंधे ही नहीं अब आर्तध्यान का २ भेद प्रशस्त अरु अप्रशस्त जिसमें से प्रशस्त आर्त

मे पियाणो म भायाणो मे भगणी णोमे भज्जाणो मे पुत्ताणो मे धूयाणो मे सुण्हा ) सुगमार्थः यहांपर आप कहोगे कि यह तो सामायिक के विषय का कथन है तो आप समझ सके हो कि सामायिक में ही उक्त तरह जानने का निषेध है तो पोषध में तो विशेषकरके उक्त बाते न जाननी चाहिये और उक्त श्रावकोने माता और कहा जिसलिये माता वा स्त्रीने निकट आकर कहा कि (भग्ग वए भग्ग नियम भग्ग पोसए,) यहांपर व्रतनियम पोषा ये तीनों पाठों का परमार्थ सर्वज्ञ सरवज्ञ है सो रहस्य श्री सिद्धांतों से जानना, इस से स्पष्ट होजायगा कि व्रत नियम पोषध भांगने का कारण उक्त कोलाहलादि करना सो है परन्तु जीवनें विषे वा करुणा करने से तेरा व्रत नियम पोषध भांगा ऐसे कहां कहा है वहां तो करुणा का नाम ही नहीं है लेकिन ऐसी झूठी २ साक्षियें दिखला के आप लोग अनजान भद्रिकों के हृदय कूं करुणा रहित करते हो, पुनः पोषाकी करणी मूलगुण संवर निर्जरा की पक्षोंर धर्म मोक्ष मार्गकी है और अनुकम्पा की करणी शुभ योग्य की पुण्य प्रकृति की है सो व्रत में क मर लगाके कार्य करना नहीं जैसे कि अभिग्रह संहन करके साधु की साधुपणी व्यावच [illegible] न करनी (दृष्टांत) दो साधु है जिनमें से एक साधु ने कायोत्सर्ग किया है इतने में श्रीगुरु [illegible] श्री गुरु महाराज की [illegible] विनय किया [illegible]

[illegible] विनय

[illegible] विषय में

[illegible] दिखाया था

यश्चित्त तो ऊपर लिखे पोषध में नहीं करने योग्य कार्य किया
नाका समझना और असंजति के जीवन विषय में आप कहोगे
कि अपना असंयम जीवितव्य नहीं वांछना यह तो श्री सूत्रजी
फरमाते हैं तो स्पष्ट है कि फिर पहिला का जीना वांछना ही
करांरहा तिसका समाधान सुनो. देवानुप्रिया समय सभ्यता
का विद्वानो सब जगह एक सरीखा न्याय नहीं ढुक सक्ता है
जैसे कि ऊपर लिखा जैकर ऐसे होवे तवतो श्री दशवैकालिक
जी के अष्टमाध्ययन में कहा है कि ( देह दुक्खं महफलं) इति
वचनात् । इसका भावार्थ देहको दुःख देने से महा मोटा फल
यानि मोक्ष होवे, अब देखिये मूल में तो अपनी देह या दूसरा
की देह ऐसे खुलासा नहीं कहा है जैसे जीवन विषय खुला-
सा नहीं कहा है तैसे, परंतु जो अपनी देह समझना तैसे ही
अपना जीवन समझना अब आप अपना जीवन नहीं वांछना
कहने मात्र से होज दूसरा का तो वांछना ही कहां रही ऐसे
सिद्ध करते हो तो कहो अपनी देह को दुख देने
से महाफल होवे तो दूसरा की देह को दुख देने से
तो महाफल होवे ऐसे मानना और कहना पड़ेगा और
श्री सूत्र जी में श्री भगवंत जी ने ठाम २ दूसरा की देह
को दुख देने से पाप होना फरमाया और वर्जित किया है
तथा श्री उत्तराध्ययन जी के प्रथमाध्ययन गाथा १५ मी में
कहा है कि ( अप्पा चेव दमे यव्वो अप्पा हुखलु दुद्दमो अप्पा
दंतो सुही होइ अस्सिं लोए परत्थय १५ सुगमार्थः इस में आत्मा
को दमना कहा है फिर कहा कि आत्मा निश्चय करके दुष्क-
र दमना है आत्मा को दमे से सुखी होवे इस लोक में भी

और परलोक में यहां पर भी आपको पर आत्मा दमने से सुखी होगें इस परलोक में ऐसे मानना और कहना पड़ेगा परंतु श्री भगवान जी ने उक्त सूत्रजी की १६ मीं गाथा में सुनाया फरमाय दिया है सो उक्त सूत्र जी से जान लेना ऐसे ही अपनी इन्द्रियों का निग्रह करना श्री तीर्थंकर गणधरों ने ठाम २ फरमाया है आपको यहां भी पहिले की इन्द्रियों का निग्रह करना मानना और कहना पड़ेगा अब समझ लेना कि जैसे ऊपर लिखी हुई तीनों मिसालें आपने गाई हैं ऐसे ही जीवन विषे समझना. आपके दिये हुये उत्तरों का अब सम्यक्त्व मर्यादा द्वारा श्री सूत्रों के प्रमाण देकर इस ऊपर लिखे आये हैं वह आप लोग सरल भाव से पक्षपात रहित होकर अवश्य बांचेंगे २ (पृष्ठ १६ सोंही पंक्ति १४ मीं से २० मीं तक की समीक्षा) इसमें आपने लिखा है कि किसी जीव की हिंसा मत करो अर्थात् अपनी तरफ से किसी को मत मारो. मरावो मत. मारे जिसको भला भी जानो मत. ऐसा [illegible] है परंतु अब जीव को मरते बचाना तथा अन्य को कहकर बचाना तथा बचाते हुए को भला समझना ऐसा पाठ श्री भगवान ने श्री आगम में नहीं फरमाया है और न कहीं आज्ञा दी है यह आप का [illegible] [illegible] श्री [illegible] सूत्र [illegible] दशवैकालिकजी के [illegible] [illegible] [illegible] के मूल [illegible] पाठ साथ [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] सूत्र सूत्रजी से [illegible] [illegible] यह में से ? [illegible]

गा और ५६ भेद उत्थप जावेंगे, यह जिन वच। उत्थापन का दंड किसके शिर पर पड़ेगा सो विचारना तथा जीव को बचाना श्री सूत्रजी में ठामठाम श्री भगवंतजी ने फरमाया है परंतु आप सरीखे अदृष्ट कल्याणी को दृष्टि में नहीं आते हैं अब हम जिज्ञासुओं के लाभार्थ तीन सूत्रों की साक्षी संक्षेप से लिखते हैं ( क ) प्रथम तो श्री शासन स्वामी श्री वर्द्धमान स्वामी जी ने श्री गोशाला जी को प्रत्यक्ष उबारा है साक्षी श्री सूत्र जी श्री भगवतीजी के शतक १५ में ( ख ) साधु भग वंत वनि करण तीन जोग से हिंसा करणे के त्याग कर चुका अब उपदेश देके ६ काय का जीव बचावे तथा छ काय की हिंसा का अन्य को त्याग करावे यह न हनने में न उबा-रने में ( ग ) श्री नेमनाथ जी २२ मां तीर्थंकरजी ने बाड़ा भरे पशु पक्षियों को छुड़ाया है यहां पर आप कहोगे कि श्री नेमनाथ जी ने तो अपना पाप टाला है यह आपका कहना स्वयं चित्त कल्पित है क्योंकि सूत्र श्री उत्तराध्ययन जी के २२ में अध्ययन में ऐसा सूत्र पाठ है ( साणु को से जीवे हेऊ ) इस में ऐसा कहा है कि अनुकंपावंत हैं जीवों का हित चिन्तवेहै परंतु अपना हित चिन्तवे ऐसे कहां कहा है फिर जीवों का हित वंछना और आपका हित वंछना यह दो नहीं हैं आपको भ्रम से दो भासे है विशेष विस्तार उक्त सूत्रजी से जानलेना हमने सर्वत्रग्रंथ गौरव भयसे तथा पाठकगणके सुखाव बोधार्थ संक्षिप्त लिखा है ( घ ) तथा श्री ज्ञाताजी के धर्म कथांगजी के प्रथम अध्ययनमें श्रेणिक महाराज के पुत्र मेघ कुवारजी ने पूर्वे हाथी के भवमें सुसा के निमित्त से तिन वह सम्पूर्ण मांडले

में जितने जीव थे तिनमें से जितना दृष्टी देखे थे तिन सबों की अनुकम्पा आणी और उक्त मुसला की प्रत्यक्ष दया पाली ए नहीं हनने में कि उबारने में ( ङ ) तथा श्री धर्मकथांगजी के १६ में अध्ययन में धर्मरुचीजी महामुनि ने चिटियों की रक्षार्थे जहर के पुंज कटुक तुंबा भक्षण किया सो न हनने में कि उबारने में ( च ) तथा श्री उपासक दशांगजी के अ॒ठा अध्ययन में ऐसा सूत्रपाठ है ( ततेणं रायगीहेणयरे ऽभया कः पाहं अमाधा ए घुटे आवो होत्था ) इति वचनात् । महाराजा श्रेणिक जो कि श्री महावीर देवका परम भक्त सम्यग दृष्टी था तिनने अपना राजगृह नगर में अमीरी पटह बजवाया है यह न हनने में है कि उबारने में ( छ ) तथा सूत्रजी श्री रायप्रश्रेणिजी में चित्त सारथी ने धर्म दलाली कीन्ही है वहां के श्रमण कुमार स्वामी से कहा है कि राजा प्रदेसी को धर्म सुनाओगे तो बहुत गुण होगा मृग पशु पक्षीयों तथा मंगता भिखारीयों को यावत् जनपद देशको समझाने से बहुत गुण होगा ऐसे कहा सो न हनने में कि उबारने में ( ज ) तथा सूत्रजी श्री उत्तराध्ययनजी के २६ वें अध्ययन गाथा ३४ मीं से साधुको छ कारण अहार छोडना कहा है जिसमें चोथे कारण में कहा कि ( पाणिदया ) प्राणी जीव की दया रक्षा के अर्थे अहार छोडे इस न्याय से असंजति जीवको उबारना दया पालनी रक्षा करनी सिद्ध है ( झ ) तथा साधु जीवको उबारना जीना वंछे साक्षी सूत्रजी श्री दशा श्रुत स्कंधजी के अध्ययन ७ वेंकी इसमें एम कहा है कि जिन कल्पित तथा अभिग्रह धारी साधु लाय लगजाने से अपने जीवन के सुखार्थे

निकले नहीं अनेरो कोई उक्त साधू को गलता देखके काढने को आवे तो विलंब रहित निकले देर करे नहीं यह न हनने में कि उबारनेमें देखिये साधु का नग जोगों में तो हिंसा का पाप नहीं लगता था इस न्याय से जीवका जीना वंछन. उबारना रक्षाकरना सिद्ध है

( ज ) तथा साध्वी ढीले कर्दम में लपसती होवे तथा विशेष कर्दम में कलती होवे तथा नदी आदि जल में वहती होवे तो तिसको साधु काढे तो आज्ञा उलंघे नहीं सा लो सूत्रजी श्रीठाणांगजी की यह न हनने में है कि उबारने में (ट) तथा सूत्रजी श्री दशवैकालिकजी के ४ अध्ययन में कहा है कि साधु के शरीरा वस्त्रादि उपगरणादिक उपरे तथा सभास्थानक के विषय कोई कीड़ी कुंथुवादिक त्रसजीव आगये तिन जीवको साधु पल्ला में लेके उन जीवकूं आशातना न उपजे तैसे स्थानक मेले यह न हनने में कि उबारने में ( ठ ) तथा सूत्रजी श्री सुयगडांगजी के श्रुतस्कंध पहिले अध्ययन ११ में कहा है कि मारो त्रस स्थावर हणे तिस जीवकी रक्षार्थे पुच्छक को तुमको पुन्य है ऐसे न कहे न तिसको करने तथा सकाम का अन्नपानादि तिसके लाभ की अंतराय पडे तस्यार्थे तुम को पुन्य नहीं है ऐसे न कहे फिर जे सावद्यदान की प्रशंसा करे वह छकाय का वंध का वांछणहार कहिजे. सावद्यदान को निषेधे तिसको हवि का छेदनहार अन्तराय का देनहार कहिये. अब देखो त्रस स्थावर जीव की रक्षार्थे पुन्य है ऐसे साधु न कहे ये न हनने में कि उबारने में ( ड ) तथा छ काय के जीवों को हनना नहि कहा मारनो [illegible]

वचन नहीं हनने में कि उवारने में ( ढ ) तथा श्री आचारांग जी सूत्र के अध्ययन २ उद्देशक ६ में कहा है कि कोई गृहस्थ साधु का सगपन राग करके आधाकर्मी आहार निपजावे वह साधु जान लेवे और उस वक्त नहीं वर्जे जाने कि मोकूं देवेगा तब निषेध देऊंगा, ऐसा जान के मौन रहे तो उक्त साधु को कपटाई लगे तो कैसे करे सो सूत्रपाठ ( से पुव्वा मेव आलोयज्जा आउसोति वा भगणी तीवाणी खलुमेकप्पई आहारकम्मेई असणं वा ४ भोत एवा पा इतरा वा माउ करही माउ उत्र खडेहि ) इसमें कहा पहिले ही वर्जे मत करो मतार्थी यह ने हनने में कि उवारने में ( ण ) तथा दशवैकालिक सूत्र जी के अध्ययन ५ में उद्देश १ गाथा २६ वें में कहा कि ( समदमाणी पाणाणी बीयाणी हरियाणीए असंजमं करं नचातारी संपरिवजेय ) इसमें कहा कि साधु को आहार देने के लिये बेइन्द्रियादिक को दमती थकी बीजधान हरी सां दर भादिक न दमती थकी असंजम सो साधु अर्थे सावद्य करणी करती थकी देवे ऐसा जान के साधु तिन प्रति वर्जे यह असंजम मत कर, यह न हनने में कि उवारने में ( तथा ) सूत्रजी श्री प्रश्न व्याकरण जी के प्रथम संवरद्वार में कहा है कि ६ काय के जीव की रक्षा वास्ते उवारने के अर्थे श्री वीतराग देव भला प्रवंचन सिद्धांत कहा यानि सर्व जीवों की रक्षा के लिये परमेश्वर उपदेश देवे सो सूत्रपाठ ( इमं च सव्वे जगजीव रक्खण दयाए पावयणं भगवया सुकहियं अतहियं पेचाभवियं आगमे सीभद्द सुद्धेन या उइं ) सुगमार्थः इसमें ऐसे कहा कि प्रवचन सिद्धांतरूपिणी वाणी श्री भगवंतजी ने भली कही

किस अर्थ कही सर्व जगत का अर्थात् संपूर्ण लोक के छकाय के जीवों की रक्षा दया के अर्थे भगवंत ने उपदेश दिया यह न हनने में कि उबारने में यहां पर आप कहेंगे कि उपदेश देवे हैं सो तो जीवों के तिरना वांछने अर्थे वा आगला के पाप टालने के अर्थ देवे है उबारने के अर्थ देना कहां [illegible] तिसका समाधान देखिए देवानुप्रिया! जीव की रक्षा यानि दया पाले से पाप टलेगा तिरना होगा इसमें क्या भला है कारण विना कार्य कैसे हो सकता है पूर्व २ कारणं पश्चात् २ कार्य इति वचनात्. आप कारण के विना कार्य का होना कैसे कहते हो तथा तारणार्थे वाणी फुरमाने का अग्रे रखते हो तो कहिये पांच स्थावर सूक्ष्म वादर तीन विकलेन्द्रिय असनी मन रहित जीव इनों को श्री भगवंत जी की वाणी कैसे तार सकेगी और उक्त सूत्र जी में ( सव्व जग जीवरखण ठयाए ) ऐसे पाठ हैं वास्ते यहां तो छः काय के जीवों की रक्षा यानि उबारने रूप दया के अर्थे परम पिता परमेश्वर उपदेश देवे वाणी प्रकाशे ऐसा जानना ये साक्षी सर्व से पुष्ट है इत्यादि श्री निर्ग्रंथ प्रव चनों में ठाम २ जीव को उबारने का रक्षा करने का दया पालने का अधिकार है वास्ते झूठा हठ दुराग्रह को छोड़के श्री सिद्धांतों के वचनों पर आस्ता लाइये यही परम कल्याण का कारण है

तथा सूत्र जी श्री ठाणांग जी के ३ ठाणे तथा सूत्रजी श्री भगवती जी के शतक ५ वे उद्देशे ६ मे कहा है कि हिंसा करतो थको. झूठ बोलतो थको. असूजता आहारादिक आप- तो थको. ३ जीव अल्प आउखो बांधे न जीव को हणे नं. १

झूंठ नहीं बोले तो २ सूजता आहारादिक देवे तो ३ शुभ दीर्घ आउखो बांधे अब देखिये जीव नहीं हणे तो दीर्घ आउखो बांधे और नहीं हनना और बचाना एक ही है सो सूत्र साक्षियों से ऊपर सिद्ध कर आये हैं यहां पर आपलोग कहोगे कि जीव हणे सो अल्प आउखो बांधे जीव नहीं हणे सो दीर्घ आउखो बांधे, अब अनुकंपाकर जीव उवारे तो क्या फल सो कहो, तिसका समाधान सुनो. अनुकंपाकरके जीव उवारे यानि बचावे सो नहीं हनने के शामिल है जिसने जीव बचाया तिसने उस जीव को मरन भय से छुड़ाया कि सामा भय में नाखा तथा अनुकंपा आन के जीव उवारे ते उवारने वाला को अध्यवसाय शुभ की अशुभ लेश्या योग्य शुभ की अशुभ सो आप स्वयं विचार सक्ते हो, अतः पर जीव उवारना सो न हनने से जुदा है ऐसे जानते हो तो कहो एक झूंठ बोले १ एक झूंठ नहीं बोले २ एक निरवद्य सांच बोले. अब निरवद्य सांच बोले सो किसमें पेठा यहां पर आपको यही कहना पड़ेगा कि निरवद्य सांच बोले सो झूंठ नहीं बोले तिसमें पेठा सो समझलो कि जीव उवारे सो भी जीव न हणे तिसमें पेठा फिर एक असूजता देवे १ एक असूजता नहीं देवे २ एक सूजता देवे ३ अब सूजता देवे सो असूजता नहीं देवे तिसके शामिल है ऐसे ही अगाड़ी सर्वत्र बोलों में समझना तथा कोई एक चोरी करे १ एक चोरी नहीं करे २ एक दिया हुवा लेवे ३ यह भी तीन बोल हैं तैसे ही एक स्त्री से बात करे १ एक स्त्री से बात न करे २ एक धर्मोपदेश की बात करे ३ एक उपगरण राखे १ उपगरण नहीं राखे २ धर्मोपगरण

न होते हैं वे अपना अपना योग हुवा ऐसे ही अनेरा के पास तीन योग से मरावे सो ऐसे कि मन करके मंत्रादिक का पाठो ध्यान करे जिनसे अनेरा अनेरा को मारने को लग जाय तो मन से मराया कहिये, ऐसे वचन से जीव मारने का उपदेश देवे. काया से हस्तपादादि की आमना समस्या जनाय के जीव को मरावे सो काया से मराया कहिये ऐसे दो करण छ योग से तो जीव मराने एक करण तीन योग से भला जाने. मनकर, वचन कर, काया कर, ऐसे तीन करण ९ योग से ६ काय के जीवों की दया पालनी, रक्षा करनी, आपका पाप टालना, परका का टलाना, पाप टालता मनि भला जानना, ऐसे सर्वत्र श्री जैनागमों में कहा है यहां पर आप कहोगे कि मरता जीव को उबारे तब उक्त जीव पर रागभाव अवश्य उत्पन्न होता है और राग से पाप होता है यह आपका कहना श्री शास्त्र ज्ञान से अतिरिक्त है क्योंकि श्री शास्त्रों में राग का अनेक भेद कहा है जैसे कि काम राग १, स्नेहराग २, दृष्टिराग ३, और धर्म राग ४ जिसमें से धर्मराग से पाप बंध नहीं होता है जेकर धर्मराग से पाप मानते हो तो श्रावकों को श्री सूत्रजी में हड़ हाड ( अट्ठीमिंजाणु रागरत्ता ) कहा है पुनः साधु को सुश्रावक हर्षभाव से आहारादि देते हैं तथा संयम पालते हैं तिन सब में पाप मानना पड़ेगा तथा सुनक्षत्रजी सर्वानुभूतीजी ने भगवंत के बचाव में गोशालाजी से दोनों मरे हैं साक्षि सूत्रजी श्री भगवतीजी के शतक १५ में है इन मुनियों को भी पाप लगना कहना पड़ेगा और इन मुनियों को तो श्रीभगवंत ने श्रीमुख से फरमाया है वास्ते धर्मरूप राग से पाप बंधन नहीं

होता पुनः जीव उबारने वाले का एकांत उस जीव पर राग नहीं किंतु जीवदया पर राग है और जीवदयादि धर्मकार्यों पर राग है. सो प्रशस्त राग है और प्रशस्त राग धर्म का कारण है इति ( पूर्ति ).

प्रियतमो सत्य धर्म का समझना यह कामबुद्धिमान् विवेकी पुरुषों का है और दश दृष्टांत से दुर्लभ ऐसा मनुष्य जन्म का सार भी मुख्य करके धर्म को पहचानना है, वास्ते हम सर्व सज्जनों से प्रार्थना करते हैं कि ऐसा विचार कभी नहीं करना की हम अमुक पंथ के हैं और निःकेवल स्याद्वाद पदलांछित निर्ग्रंथ प्रवचन कःहीन आग्रह करना उचित है, कारण कि जो मनुष्य मताग्रही हठी दुराग्रही दृष्टिरागी होता है तिसको उक्त निर्ग्रंथ प्रवचन का यथार्थ बोधरूप फल वंध्या स्त्री को तरह प्राप्त नहीं हो सक्ता है और हमने उर्द्ध लिखे लेख में उपयोग सहित असभ्य वचन वा तीक्ष्ण कटुक वचन विशेषतः नहीं लिखा है क्योंकि पूर्वोक्त वचन कहना और लिखना यह विवेकी पुरुषों का काम नहीं दूसरे उक्त वचन कहने और लिखने से विरोध बढता है सम्यक्त्व का अभाव होता है निःकलंक चन्द्र किरणवत् शीतल श्री जैन धर्म की निंदा होती है और श्री जिन मार्ग का यह मुख्य सिद्धांत है कि किसी को पूर्वोक्त वचन कहकर वा लिखकर रंज पहुंचाने से बडा भारी दोष है, इसलिये इस लेख में हमने विशेष पूर्वोक्त वचन नहीं लिखा है तथापि यदि कोई शब्द आपको असह्य हो वा तीक्ष्ण कटुक लगे तो आप से खुलासा करते हैं कि असह्य को तो जैसे सम्यग्दृष्टी पूर्वोपार्जित कर्मोदय काल मे समभाव सहे तद्वत् सहना और तीक्ष्ण

पद तारतम्य योग्य मानते हैं लेकिन चूकनेकानियम तथा असंभव नहीं मानते हैं ( प्रश्न दूसरा ) गृहस्थी असंयति इव्रति अणतीर्थि इन्हों को दान देने में धर्म कहते हो सो मुग्धराव दिखलाओ-( उत्तर दूसरा ) गृहस्थीका श्री सिद्धान्त शास्त्र में तीन भेद कहा है। देश व्रति १ सम्यग्दृष्टि २ और मिथ्यादृष्टि ३ जिसमें देशव्रति को मध्यम पात्र कहा है १ सम्यग्दृष्टी को जघन्यपात्र कहा है २ और मिथ्यादृष्टि को अपात्र या कुपात्र कहा है ३ अब जैसा दातार का चित्त और वित्त तस्यानुसार फल होता है अब आप लोग स्वतः समझ सकते हैं कि हमारा मन्तव्य क्या है तथापि हम लिखते हैं सो एकाग्र चित्तकर सुनिये श्रीमद् भगवतीजीके शतक ८ में उद्देश ६ में श्रमण नाम साधु माहण नाम यहांपर ११ मी प्रतिमा प्रतिपन्न यानि पडिमाधारी श्रावक ग्रहण करना, इन्होंका निरवद्य दान एकांत निर्जरा में कहा है और तथारूप असंयति सो ३६३ पाखंड प्रवर्तक पाखंड भेषधारी का दान में एकांत पाप मोहकर्म के देनेमें कहा, यहां अन्य श्रावक सम्यग्दृष्टि तथा दुर्बल अभ्यागतादि अनाथादिकों को भी परमेश्वर ने छोड़दिया, क्यों कि उन्हों का दान में निर्जरा पुन्य वा पाप का एकान्त प्रमाण नहीं इसवास्ते इसका दान मिश्र स्थान ज्ञेय पदार्थ मानते हैं इसका प्रमाण सूत्रार्थ की साक्षी पूर्ववत् ( प्रश्न तीसरा ) ४२ दूषण टाल आहार के मांसी पडिमाधारी उत्कृष्ट श्रावक [illegible] का [illegible] गाव [illegible] तथा दुर्बल अभ्यागत का दान [illegible] सो सूत्रपाठ दिखलाओ ( उत्तर [illegible] ) [illegible] से दान देने

पथ तारतम्य योग्य मानते हैं लेकिन चूकनेकानियम तथा असंभव नहीं मानते हैं ( प्रश्न दूसरा ) गृहस्थी असंजति इव्रति अणतीर्थि इणों को दान देने में धर्म कहते हो सो सूत्रपाठ दिखलाओ-( उत्तर दूसरा ) गृहस्थीका श्री सिद्धान्त शास्त्रों में तीन भेद कहा है। देश वृत्ति १ सम्यगदृष्टि २ और मिथ्यादृष्टि ३ जिसमें देशव्रत्ति को मज्झम पात्र कहा है १ सम्यगदृष्टी को जघन्यपात्र कहा है २ और मिथ्यादृष्टि को अपात्र या कुपात्र कहा है ३ अब जैसा दातार का चित्त और वित्त तस्यानुसारे फल होता है अब आप लोग स्वतः समझ सकते हैं कि हमारा मन्तव्य क्या है तथापि हम लिखते हैं सो एकाग्र चित्तकर सुनिये- श्रीमत् भगवतीजीके शतक ८ में उद्देश ६ में श्रमण नाम साधु माहण नाम यहांपर ११ मीं प्रतिमा मतिम यानि पड़िमाधारी श्रावक ग्रहण करना, इनोंका निरवद्य दान एकांत निर्जरा में कहा है और तथारूप असंजति सो ३६३ पाषंड प्रवर्त्तक पाषंड भेषधारी का दान में एकांत पाप मिथ्यात्वार्थे देनेसे कहा, यहां अन्य श्रावक सम्यगदृष्टि तथा दुर्बल अभ्यागतादि अपात्रादिकों को श्री परमेश्वर ने छोड़दिया, क्यों कि उनों का दान में निर्जरा पुन्य वा पाप का एकान्त प्रमाण नहीं इसवास्ते इसका दान मिश्र स्थान ज्ञेय पदार्थ मानते हैं इसका प्रमाण सूत्रार्थ की साक्षी पूर्ववत् ( प्रश्न तीसरा ) ४२ दूषण टाल आहार के भोगी पड़िमाधारी उत्कृष्ट श्रावक त' पस्वी को ४२ दूषण टालके देनेवालेको तथा दुर्बल अभ्यागत को दान देने में एकांत धर्म कहते हो सो सूत्रपाठ दिखलाओ ( उत्तर तीसरा ) उक्त श्रावकजी को उक्त रीति से दान देने

धर्म अर्थ, जिसमें से स्वार्थ वास्ते असंजति को पोषे पोषवावे और पोषते हुवे को भला जाने जिसमें हम धर्म नहीं मानते हैं और अनुकम्पा अर्थ पोषे, पोषवावे, पोषते हुवे को भला जाने जिसमें पुन्य तीजा पदार्थ मानते हैं सो सूत्र का प्रमाण ऊपर लिख आये हैं वहां से जान लेना ( प्रश्न सातवां ) असंयति का असंयम जीवितव्य वांछने हो वंछाने हो वांछते हुवे को भला जानते हो सो सूत्रपाठ दिखलावो ( उत्तर सातवां ) असंयति का असंयम जीवितव्य हम वांछने में वंछाने और वांछते हुए को भला जानने में धर्म पुन्य नहीं मानते हैं और असंयति का असंयम जीवितव्य वांछे वंछावे वांछते हुवे को भला जाने जिसको भी हम भला नहीं मानते हैं हमने असंयति का जीवना वांछे वंछावे वांछतेहुए को भला जाने जिसमें पुन्य मानते हैं.

और असंयति का जीना और असंयम जीवितव्य अलग २ हैं इसका निर्णय सिद्धान्तों से कर लेना विशेष खुलासा असंयति का जीवितव्य भी २ प्रकार से वांछे जाते हैं एक स्वार्थ वास्ते दूसरा परमार्थ वास्ते अर्थात् अनुकम्पा वास्ते मान मद से स्वार्थार्थ जिसमें स्वार्थ वास्ते वांछे, वंछावे, वांछते हुवे को भला जाने जिसमें हम परमार्थ नहीं मानते हैं और अनुकम्पा वास्ते असंयति का जीवितव्य देख दिलावे देते हुवे को भला जाने जिसका मतलब आगे असंयति का असंयम जीवि तव्य वांछने वंछावने और वांछते हुवे को भला जानना कहते हो वह न कहते पर वृद्धि न करना है और हम तो जिस दूसरे अनुकम्पा भाव से जीव का बचाव जिसमें पुन्य

## ❀ इस पुस्तक का शुद्धाशुद्ध पत्र ❀

पाठकगणों प्रथम निम्न लिखित अशुद्धिओं को सुधार के फिर यत्ना से पढ़ें अबकी प्रूफ नहीं शोधने के सबब से अशुद्धियां बहुत रह गईं इस कारण क्षमा करें आइन्दा ख्याल रक्खा जावेगा ॥

| पृष्ट | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| २ | १७ | रतनचंदजी | रतनचंदजी आदि |
| ५ | ६ | उदेयो | उदेय |
| ७ | १२ | ७ वां | ९ हो |
| ८ | ५ | के | को |
| ८ | १० | के | से |
| १० | ६ | ताड | ताड़ |
| १० | १६ | जोग | जगे |
| १४ | १७ | देखाते हैं | दिखाया है |
| १५ | २ | की | को |
| १५ | ६ | भगवंतजी | भगवंतजी को |
| १५ | ११ | गोशाल | गोशाला |
| १५ | १८ | दीक्षा | दीक्षा नहीं |
| १६ | १ | लकर | लेकर |
| १६ | ८ | मैं वम हैं | मैं कमरेश हैं |
| १६ | २३ | परिपट्ट | परिसह |
| १८ | १ | साष्टांग | आष्टांग |

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
| --- | --- | --- | --- |
| ५८ | ३ | का | को |
| ५८ | ६ | कल्पनीए | कल्प नहीं |
| ५८ | १७ | का | को |
| ५८ | १३ | की | को |
| ५८ | २० | हृपादि | वर्षादि |
| ५६ | २२ | जानन | जिनाना |
| ६० | १८ | वस्क | वस्तु |
| ६० | २० | छाम्या | छाक्यां |
| ६० | २३ | डो | हो |
| ६१ | १ | घार | घर |
| ६१ | २ | अत्यंअंतर | अभ्यंतर |
| ६१ | ४ | साधन | साधने |
| ६४ | १ | करनी | करनी आज्ञा में |
| ६४ | २ | २८ वें आज्ञा में | २८ वें |
| ६४ | २२ | मति धारी | मतिमाधारी |
| ६६ | २ | अकाय | अकाम |
| ६६ | ७ | नन | नव |
| ६६ | १० | उत्तम | उक्त |
| ७० | १८ | १५६०० | १५६००० |
| ७० | १८ | आएे | आरे |
| ७१ | १६ | या | ये |
| ७३ | १२ | इण्गावां | इंद्या वा |
| ७४ | १४ | हाणु | निद्दाणु |

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ७४ | १६ | ववेदश | वसैदश |
| ७४ | २० | जीवा | जीना |
| ७४ | २१ | यत्र | नेत्र |
| ७५ | ६ | सर्वा | सर्वे |
| ७७ | २३ | देसो | देसे |
| ७७ | १६ | धर्मनागरे | धर्मत्रागरे |
| ७७ | १५ | अपना | और |
| ७८ | ७ | करने को | करते को |
| ७८ | १० | धरा | धरी |
| ७८ | २० | निपद्य | निरवद्य |
| ८० | १६ | जेष्ठिका | लष्ठिका |
| ८२ | २४ | वया | क्रिया |
| ८२ | ७ | नै | ० |
| ८२ | १२ | आपने | अपने |
| ८३ | ३ | अर्ता | आर्ते |
| ८४ | ६ | मांगने | मागने |
| ८५ | १४ | रही | रहा |
| ८५ | १७ | पडेगा | पड़ेगा |
| ८३ | २ | " | " |
| ८३ | ३ | को | की |
| ८६ | ५ | गणाधारी | गणधरों |
| ८७ | २४ | सुमा | सुसज्ञा |
| ८७ | ४ | को | की |

| पृष्ट | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
| --- | --- | --- | --- |
| ८८ | ११ | रायव | राय पर |
| ८८ | १२ | के | किसी |

## ❁ पाठ का शुद्धाशुद्ध ❁

| | | | |
| --- | --- | --- | --- |
| ३ | २२ | सुवंणं | सुविणे |
| ५ | ६ | तओ | तऊ |
| ७ | ६ | जो | नो |
| १३ | ७ | पण्णाणे | वराणे |
| ,, | ८ | फ्र | व |
| १६ | ६ | स्सि | सि |
| ,, | ७ | नयाए | ठयाए |
| ,, | ७ | लीय | सीय |
| ३५ | २ | नय | जय |
| ,, | ३ | जयणं | जयदाणं |
| २८ | १३ | हिणमती | दीण भक्ति |
| ,, | १४ | णा | णु |
| ,, | ४ | उवरकंडावेव | उम्वड्डावेता |
| ,, | ५ | पणं | यणं |
| ,, | २० | उवरका | उवत्त |
| ,, | २१ | माय | भाय |
| ३२ | १६ | पैएसे | पैएसो |
| ३२ | २० | समरवाओ | समत्ताओ |
| ,, | २१ | निण | जिण |

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ४२ | ५ | पणत्वया | यसात्वया |
| ५० | ६ | मदरकुदू | मदल्हु |
| ६० | १ | रास | एस |
| ,, | १ | पफ | ह |
| ,, | २ | परकेह | पलहे |
| ,, | ४ | सहं | सुहं |
| ७३ | ७ | हा | एह |
| ८५ | ८ | दुरकं | दुसं |
| ,, | २१ | दु | हु |
| ,, | ८ | महफलं | महा फलं |
| ८८ | ८ | पाहं | यहं |

इस के सिवाय और भी अनुस्वार मात्रा वगैरह के
भाषा संबंधी सर्व दोषों को शुद्ध कर यत्ना से पढ़ियेगा
गुणों ही को ग्रहण करियेगा अवगुणों को त्याग करियेगा

——:o:——

## पाठकों को सूचना

इस पुस्तक के प्रूफ सुधारने में भूलें रही हो तो पाठक
क्षमा प्रदान करें और इस पुस्तक को यत्नपूर्वक पढ़ें. दी
के उजियाले में न पढ़ें.